खंड 5

पर्यावरण और सतत विकास

खंड प्रस्तावना

विषय प्रवेश

अब हम उपांतिम खंड – पाठ्यक्रम के पाँचवें खंड – पर पहुँच चुके हैं। इस खंड का नाम **पर्यावरण और सतत विकास** है। इस खंड में भी दो ही इकाइयाँ हैं। खंड सतत विकास जैसे महत्वपूर्ण विषय पर विस्तृत चर्चा करता है। यहाँ अवधारणा के साथ–साथ पर्यावरण और आर्थिक विकास के बीच की कड़ी पर भी चर्चा की गई है। खंड बाह्यता की अवधारणा की भी व्याख्या करता है।

इस खंड की पहली इकाई **सतत विकास** (इकाई 11) इस बात पर चर्चा करती है कि आर्थिक विकास पर्यावरण को कैसे प्रभावित करता है। इकाई सातत्य को परिभाषित कर उसकी व्याख्या करती है तथा विकास में अक्षय संसाधनों की भूमिका को स्पष्ट कर उन पर चर्चा भी प्रस्तुत करती है। आगे इकाई पर्यावरण परिवर्तन का एक संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करती है। इकाई कॉमन–पूल संसाधनों की व्याख्या और उन पर विस्तृत चर्चा भी करती है।खंड की अंतिम इकाई **बाह्यताएँ और राज्य पर्यावरण विनियमन** (इकाई 12) सार्वजनिक अर्थशास्त्र, पर्यावरण अर्थशास्त्र और विकास अर्थशास्त्र के मूल तत्वों को परस्पर जोड़ती है। इकाई आर्थिक क्रियाकलाप और जलवायु के बीच संबंधों का अन्वेषण भी करती है। इकाई में बाह्यताओं की अवधारणा को स्पष्ट कर उसकी व्याख्या की गई है। इकाई अर्थशास्त्र में कोस प्रमेय, बाह्यताओं हेतु सुधारात्मक उपाय, पिगोवियन कर और उत्सर्जन कर जैसे अति महत्वपूर्ण विषयों पर पक्ष और विपक्ष दोनों में चर्चा प्रस्तुत करती है।

इकाई 11 सतत विकास *

संरचना

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 सतत विकास

11.3 नवीकरणीय संसाधन

11.3.1 नवीकरणीय संसाधनों के प्रकार

11.4 पर्यावरण परिवर्तन का संक्षिप्त इतिहास

11.4.1 भारत की पर्यावरणीय समस्याएँ

11.4.2 भूमंडलीकरण और पर्यावरण परिवर्तन

11.5 कॉमन–पूल संसाधन

11.5.1 कॉमन्स की त्रासदी

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें/संदर्भ

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- सतत विकास की संकल्पना स्पष्ट कर सकें;
- नवीकरणीय संसाधनों को परिभाषित कर उनके प्रकार बता सकें;
- कालांतर में होने वाले पर्यावरणीय परिवर्तनों पर चर्चा कर सकें;
- कॉमन–पूल संसाधनों को परिभाषित कर सकें; तथा
- कॉमन–पूल संसाधनों से जुड़े विषयों पर विस्तृत चर्चा कर सकें।

11.1 प्रस्तावना

पर्यावरण का मानवजाति के लिए अतीव महत्व है। मनुष्य अपने दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार के संसाधनों का प्रयोग करता है। ये संसाधन जिस भी प्रकार प्रयोग किए जाएँ,

* डॉ. निधि तेवतिया, असिस्टेंट प्रोफेसर, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठए इग्नू कृत

पर्यावरण अवश्य प्रभावित होता है। संसाधनों का अपव्यय हमें उनके रिक्तीकरण की ओर ले जाता है। अतः इस इकाई की शुरुआत हम सतत विकास और नवीकरणीय संसाधनों की संकल्पना को समझते हुए करेंगे।

वैश्विक पर्यावरण में परिवर्तन और जलवायु परिवर्तन के विषय में हम आए दिन समाचारों में पढ़ते–सुनते ही रहते हैं। अतः इस इकाई के एक पाठांश में हम पर्यावरण और कालांतर में उसमें आए परिवर्तनों के विषय में भी जानेंगे। कुछ संसाधनों के साझा स्वामित्व संबंधी गुणधर्म के कारण पर्यावरणीय अवनयन भी देखने में आता है। इस प्रकार के संसाधन कॉमन–पूल संसाधनों की श्रेणी में आते हैं और मनुष्य ऐसे संसाधनों की उपलब्धता का लाभ उठाता ही है। अतः इस इकाई का अंतिम पाठांश ऐसे संसाधनों को ही समर्पित होगा।

11.2 सतत विकास

प्राकृतिक संसाधन किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए मूलभूत आवश्यकताओं के रूप में लिए जाते हैं। परंतु वे सीमित हैं और विशिष्ट स्थानों पर ही उपलब्ध हैं। उनकी यह सीमा उन्हें अल्पता और किसी भी अर्थव्यवस्था की तीन प्रमुख समस्याओं की ओर ले जाती है। संसाधनों का निष्कर्षण और उन्हें वांछित स्थान पर ले जाने के काम में कुछ न कुछ लागत निहित होती है जो कि फिर उत्पादन लागत में ही जुड़ जाती है। अतः किसी न्यायसंगत तरीके से इन संसाधनों का आवंटन किया जाना आवश्यक हो जाता है। इससे सर्वाधिक कार्यक्षम लागत संयोजन हासिल करने में मदद मिलती है। इसलिए कहा जा सकता है कि संसाधन आवंटन उत्पादन उपादानों के कुशल नियतन हेतु एक महत्वपूर्ण अध्ययन विषय है, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का आवंटन भी शामिल है।

अपने यहाँ खनिज, तेल, धातु आदि विविध प्राकृतिक भंडारों की उपलब्धता की वजह से ही अनेक देशों ने द्रुत संवृद्धि हासिल की है। परंतु इस प्रकार की संवृद्धि की सामाजिक लागत पर्यावरणीय अवनयन के रूप में सामने आती है। प्राकृतिक संसाधनों का अवनयन अर्थात् निम्नीकरण प्रायः आजीविका हनन की ओर ले जाता है क्योंकि अनेक लोग अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में इन संसाधनों पर ही निर्भर होते हैं। यह अवनयन जन साधारण के स्वास्थ्य एवं कल्याण पर भी संकट उत्पन्न करता है।

एक आम धारणा के अनुसार, वायु और जल प्रदूषण विगत दशकों में एक बड़े स्वास्थ्य संकट के रूप में उभरे हैं। यह इस बात का भी संकेत है कि उक्त संसाधन अपने कुशल स्तर पर प्रयोग नहीं किए जाते हैं। ऐसे प्रभावों के बोध ने ही सतत विकास की अवधारणा का मार्ग प्रशस्त किया। सतत विकास की इस अवधारणा के अनुसार, मानव समाज अपना जीवन जीयें और अपनी आवश्यकताएँ भावी पीढ़ियों की उनकी अपनी आवश्यकता–पूर्ति क्षमता को संकट में डाले बिना पूरी करें। सतत विकास की 'औपचारिक' परिभाषा सर्वप्रथम वर्ष 1987 में ब्रंटलैंड रिपोर्ट[1] में सामने आई। दूसरे शब्दों में, सतत विकास का अर्थ समाज को इस तरीके से व्यवस्थित किया जाना है कि वह लंबे समय तक कायम रहे। इसका मतलब है कि हम संसाधनों के कुशल प्रयोग के साथ–साथ सामाजिक एवं आर्थिक समानता के अपने स्पष्ट लक्ष्य के साथ उनकी वर्तमान एवं भावी आवश्यकता को भी ध्यान में रखें।

वर्ष 1987 में प्रकाशित अपनी रिपोर्ट में पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र विश्व आयोग (WCED) ने विकास के उस स्तर पर पहुँचने के लिए जो कालांतर में कायम रहे, अंतर्राष्ट्रीय के साथ–साथ अंतरजन्य साम्य (inter-generational equity) को भी हासिल किए जाने पर भी बल दिया। इस प्रकार उपलब्ध संसाधन आधार वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के जीवन की औसत गुणवत्ता सुधारने में सहायक सिद्ध होगा। अंतरजन्य दक्षता (inter-generational efficiency) के संदर्भ में संसाधनों का अनन्त उपभोग सुनिश्चित करने के लिए अर्थशास्त्रियों ने सुझाव दिया कि हमें पुनर्निवेश करना होगा। यह पुनर्निवेश नवीकरणीय और गैर–नवीकरणीय संसाधनों के सृजन, अन्वेषण एवं अनुसंधान के क्षेत्र में होना चाहिए। इस उपागम के साथ समस्या यह है कि सभी संसाधन प्रतिस्थापनीय नहीं होते। साथ ही, उन्हें उस गति से सृजित नहीं किया जा सकता जिस गति से उनका उपभोग किया जा रहा है।

---

[1]वर्ष 1987 में पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र विश्व आयोग (WCED), जिसे वर्ष 1983 में स्थापित किया गया था, ने 'हमारा साझा भविष्य' (Our Common Future) नामक एक रिपोर्ट प्रकाशित की। आयोग की अध्यक्षा ग्रो हर्लेम ब्रंटलैण्ड के नाम पर इस दस्तावेज को 'ब्रंटलैंड रिपोर्ट' के रूप में जाना जाने लगा। इसमें सतत विकास के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों को विकसित किया गया है, जैसा कि आज आमतौर पर समझा जाता है।

पारिस्थितिक संधारणीयता (ecological sustainability) की संकल्पना के आधार पर व्यापक विचार–विमर्श होता रहा है। अपनी भावी पीढ़ियों के कल्याण को ध्यान में रखते हुए हमें ये संसाधन इस प्रकार आवंटित करने होंगे कि कालांतर में विकास के स्तर कायम रखने में मदद मिल सके। इसका अर्थ है कि हमें उपभोक्तावाद के उन स्तरों पर सवाल उठाना होगा जहाँ विकसित देश और विकासशील देशों का धनाढ्य वर्ग साफ दिखाई पड़ रहे हैं। वर्ष 1992 में रियो डी जनेरियो में आयोजित 'पृथ्वी सम्मेलन' का विषय यही रहा। इस सम्मेलन की कार्यसूची 'एजेंडा–21' में यह स्वीकार किया गया कि मनुष्य प्रकृति के साथ सामंजस्य रखते हुए एक स्वस्थ और फलप्रद जीवन जीने का हकदार है।

ये सतत विकास लक्ष्य (SDGs) जिन्हें 'वैश्विक लक्ष्य' भी कहा जाता है, वर्ष 2015 में संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य देशों द्वारा अंगीकृत किए गए, जिनमें वर्ष 2030 तक गरीबी समाप्त करने, पृथ्वी ग्रह के पर्यावरण की रक्षा करने और सभी लोगों के लिए शांति एवं समृद्धि सुनिश्चित करने के लिए कार्रवाई हेतु विश्वव्यापी आह्वान शामिल है। इनमें 17 लक्ष्य संकलित हैं अर्थात् इनमें यह मानकर चला जाता है कि एक क्षेत्र में कार्रवाई अन्य क्षेत्रों के परिणामों को प्रभावित करेगी, और यह भी कि विकास सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय संधारणीयता में संतुलन के साथ ही हो।

फिर भी यह स्वीकार करना ही होगा कि अनिश्चितता (uncertainty) संधारणीयता के अर्थशास्त्र में एक प्रमुख अवधारणा के रूप में सामने आती है। कालांतर में अपेक्षा की जाती है कि प्रौद्योगिकी, आय एवं जन अधिमानों में परिवर्तन अवश्यंभावी होंगे। परिवर्तनशील आपेक्षिक अभावों एवं ज्ञान के प्रत्युत्तर स्वरूप प्रौद्योगिकी में बड़े बदलाव आ सकते हैं। आमदनी भी एक–सी नहीं रहेगी और अधिमान पीढ़ी दर पीढ़ी बदलते रहेंगे। यहाँ समस्या परिवर्तन की नहीं बल्कि इस बात की है कि हमें पक्के तौर पर नहीं पता

होता कि ये परिवर्तन कैसे और कब होंगे। साथ ही, हम इस बात से भी अनभिज्ञ होते हैं कि इन परिवर्तनों के भावी संसाधन उपलब्धता पर क्या परिणाम होंगे।

11.3 नवीकरणीय संसाधन

नवीकरणीय ऊर्जा को प्रायः स्वच्छ ऊर्जा कहा जाता है। ऐसे प्राकृतिक संसाधन जिन्हें नवीकरणीय की श्रेणी में रखा जाता है, स्वयं उत्पादन में सक्षम होते हैं। ऐसी कोई भी वस्तु जो वायुमंडल का हिस्सा हो, नवीकरणीय प्राकृतिक संसाधन (renewable natural resources) की श्रेणी में आती है। उदाहरण के लिए, धूप सदा खिलती रहती हैं और हवा सदा बहती रहती है, भले ही उनकी उपलब्धता समय और मौसम पर निर्भर करती है।

जबकि नवीकरणीय ऊर्जा को अक्सर किसी नई प्रौद्योगिकी के रूप में लिया जाता है, प्रकृति की इस शक्ति का प्रयोग तापन, परिवहन, प्रकाशन, आदि के लिए एक लंबे समय से होता आया है। वायु सागर में जलयानों को नौवहन करने और अनाज पीसने के लिए पवन–चक्कियाँ चलाने के लिए ऊर्जा प्रदान करती रही है। धूप दिन भर गर्मी प्रदान करने और रात भर आग सुलगाए रखने में मदद करती आई है। इनके अलावा, मत्स्य और वन जैसे संसाधन नवीकरणीय भी हैं और उनकी प्रतिपूर्ति भी हो सकती है।

विगत लगभग 500 वर्षों से मनुष्य कोयला और कोयले से निकली गैस जैसे अपेक्षाकृत सस्ते व अस्वच्छ ऊर्जा स्रोतों का उत्तरोत्तर प्रयोग करता रहा है। नवीकरणीय संसाधनों के प्रयोग की सही विधि तलाश करना एक ऐसा काम है जो अधिकाधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है क्योंकि पृथ्वी द्वारा गैर–नवीकरणीय संसाधनों की आपूर्ति निरंतर क्षीण होती जा रही है। बहरहाल, हाल के वर्षों में नवीकरणीय ऊर्जा कहीं अधिक लोकप्रिय हुई है क्योंकि नवाचार लागत खर्च कम करता रहता है। मानो स्वच्छ ऊर्जा से युक्त भविष्य देने का वायदा पूरा हो रहा हो। ये अक्षय ऊर्जा स्रोत बिजली के क्षेत्र में उत्तरोत्तर ''अस्वच्छ'' जीवाश्म ईंधन का स्थान लेते जा रहे हैं, जो कि अपेक्षाकृत कम कार्बन उत्सर्जन व अन्य प्रकार के प्रदूषण का लाभ प्रदान करता है। किंतु प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग उत्तरोत्तर गंभीर होता जा रहा है – अनेक प्रकार के नवीकरणीय संसाधनों का प्रतिस्थापन उस गति से नहीं हो रहा जिस गति से उनका उपभोग हो रहा है। अतः इन संसाधनों के नष्ट हो जाने अथवा विलुप्त हो जाने का भय व्याप्त है।

हाल के वर्षों में मछलियों की अनेक प्रजातियों का रिक्तीकरण और अनेक प्रकार के पेड़–पौधों एवं जीव–जन्तुओं का विलोपन, तदनुसार, जैव विविधता में ह्रास लाकर चिंता का विषय बन चुके हैं। विश्व स्तर पर अनेक कार्य–योजनाएँ संकटापन्न प्रजातियों को बचाने के लिए चलाई जा रही हैं। इस संदर्भ में प्रकृति में विविधता कायम रखने और पादप एवं जंतुओं की विभिन्न प्रजातियों की उत्तरजीविता बनाए रखने के लिए वानिकी और वन्यजीव संरक्षण का महत्व बढ़ गया है। इसके अलावा, ''नवीकरणीय'' के रूप में खरीद–फरोख्त किए जाने वाले सभी ऊर्जा स्रोत पर्यावरण के लिए लाभप्रद नहीं होते। वन्य जीवन पर प्रभाव, जलवायु परिवर्तन और ऐसे ही अन्य विषयों पर विचार करते समय जैव ईंधन एवं जल–विद्युत बाँध दो विपरीत वांछनीय स्थितियों को जन्म देते हैं।

नवीकरणीय संसाधनों के प्रयोग से जुड़ी एक अन्य चुनौती यह है कि नवीकरणीय ऊर्जा गैर–नवीकरणीय ऊर्जा के मुकाबले कम भरोसेमंद हो सकती है। इस प्रकार उत्पन्न ऊर्जा

की मात्रा में मौसमी और यहाँ तक कि दैनिक परिवर्तन भी हो सकते हैं। बहरहाल, हमारे वैज्ञानिक नवीकरणीय संसाधनों की प्रयोज्यता और विश्वसनीयता सुधारने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं। नवीकरणीय ऊर्जा के प्रति संपरिवर्तन न सिर्फ विश्व की तेजी से बढ़ती जनसंख्या को बेहतर तरीके से कायम रख पाएगा, बल्कि आने वाली पीढ़ियों को एक अधिक स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण भी मुहैया करवा पाएगा।

11.3.1 नवीकरणीय संसाधनों के प्रकार

जैव ईंधन का अर्थ होता है – पेड़–पौधों और जीव–जन्तुओं से उत्पन्न अथवा प्राप्य कार्बनिक पदार्थ। इसमें लकड़ी, मलजल, और मक्का व अन्य पौधों से प्राप्त होने वाला पदार्थ 'इथेनॉल' शामिल होते हैं। जैव ईंधन का प्रयोग एक ऊर्जा स्रोत के रूप में किया जा सकता है क्योंकि यह कार्बनिक पदार्थ सूर्य से ऊर्जा अवशोषित कर चुका होता है। यही ऊर्जा फिर उसे जलाए जाने पर ताप के रूप में उन्मोचित होती है। आवासीय प्रयोग छोड़कर, ऊर्जा के लिए जैव ईंधन के सभी स्रोतों का प्रयोग करने वाले शीर्षस्थ देश ब्राजील, अमेरिका और भारत हैं।

जल शक्ति को प्राचीनतम नवीकरणीय संसाधनों में गिना जाता है, जिसका प्रयोग हजारों साल से होता रहा है। आज हर अमेरिकी देश जल विद्युत की कुछ मात्रा का प्रयोग अवश्य करता है। जल शक्ति के उदाहरण में बहते पानी से यांत्रिक ऊर्जा को बिजली पैदा करने के लिए प्रयोग किया जाता है। जल–विद्युत संयंत्र पानी से चलने वाले टर्बाइन को घुमाने के लिए नदियों और झरनों के प्रवाह का प्रयोग कर बिजली पैदा करने वाले जेनरेटर को चलाते हैं। जल–शक्ति से सर्वाधिक बिजली बनाने वाला देश चीन है।

भूतापीय ऊर्जा पृथ्वी के क्रोड़ में गहरे उत्पन्न होने वाली गर्मी से प्राप्त की जाती है। भूतापीय जलाशय किसी सक्रिय ज्वालामुखी के पास अथवा बहुत नीचे जमीन में टेकटोनिक प्लेट की मेढ़ों पर पाए जाते हैं। भूतापीय ऊर्जा किसी विद्युत संयंत्र तक गर्म जल या भाप पहुँचाने के लिए प्रवेधन विधि से कुएँ खोदकर प्राप्त की जाती है। इस ऊर्जा को ताप और बिजली पैदा करने के लिए प्रयोग किया जाता है। आइसलैंड में ऐसे अनेक जलाशय हैं।

पवन ऊर्जा हवा से चलने वाले टर्बाइन को घुमाकर पैदा की जाती है। तेज हवा टर्बाइन की पंखुड़ियों को जब घुमाती है तो उससे जुड़ा जेनरेटर यांत्रिक ऊर्जा को बिजली में बदल देता है। घरों व अन्य भवनों में आपूर्ति के अलावा इस बिजली को पावर ग्रिड में इकट्ठा भी किया जा सकता है। चीन के गांसू प्रांत में विश्व का सबसे बड़ा तटीय पवन–चक्की संयंत्र लगा है।

सूर्य के विकिरण को भी ऊर्जा स्रोत के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। **सौर ऊर्जा** को बिजली में बदलने के लिए फोटोवोल्टिक सेल प्रयोग किए जाते हैं। ऐसा प्रत्येक सेल आपके कैल्कुलेटर को चलाने के लिए पर्याप्त बिजली उत्पन्न कर लेता है, लेकिन जब इनको जोड़कर सोलर पैनल या उससे भी बड़ा कोई शृंखला समूह बना लिया जाता है तो ढेरों बिजली पैदा होती है। चीन, अमेरिका, जर्मनी, जापान और भारत सौर ऊर्जा उत्पन्न करने वाले पाँच अग्रणी देश हैं।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए 1

नोटः i) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।
ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपनी प्रगति की जाँच करें।

1) संधारणीयता की संकल्पना क्यों महत्वपूर्ण है? स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

2) संधारणीयता कायम रखने के प्रति अनिश्चितता द्वारा पेश की जाने वाली चुनौतियों पर प्रकाश डालें।

.....

.....

.....

3) नवीकरणीय संसाधन क्या हैं? विभिन्न नवीकरणीय संसाधनों को सूचीबद्ध करें।

.....

.....

.....

.....

4) स्पष्ट करें कि नवीकरणीय ऊर्जा कैसे कारगर सिद्ध होती है। नवीकरणीय ऊर्जा के प्रयोग में क्या कोई चुनौतियाँ पेश आती हैं?

.....

.....

.....

.....

11.4 पर्यावरण परिवर्तन का संक्षिप्त इतिहास

मोटे तौर से, पर्यावरण पृथ्वी पर जीवन कायम रखने के लिए अनिवार्य है। इसके हमारे प्रति अनेक प्रकार्य हैं जिन्हें चार श्रेणियों में रखा जा सकता है। ये चार श्रेणियाँ इस प्रकार हैं – i) उत्पादन प्रकार्य, ii) विनियमन प्रकार्य, iii) पर्यावास प्रकार्य, और iv) सूचना प्रकार्य।

जैसा कि आप जानते ही हैं, पर्यावरणीय अवनयन (environmental degradation) पर्यावरणीय सेवाओं के प्रवाह को बाधित करता है। वायु, जल व मृदा में उनकी स्वांगीकारक क्षमता से अधिक प्रदूषकों का निक्षेपण इन अत्यंत महत्वपूर्ण संसाधनों की गुणवत्ता में गिरावट लाने वाला होता है।

11.4.1 भारत की पर्यावरणीय समस्याएँ

किसी भी पर्यावरणीय समस्या की प्रकृति विचाराधीन क्षेत्र में आर्थिक विकास के स्तर और वहाँ की भौगोलिक दशा पर निर्भर करती है। भारत चूँकि निम्न प्रति व्यक्ति आय, उच्च जनसंख्या सघनता, कृषि पर आश्रित श्रमबल और ग्रामीण क्षेत्रों की उच्च प्रतिशतता वाला एक विकासशील देश है, यहाँ की समस्याएँ विकसित देशों की समस्याओं से भिन्न हैं। अनेक क्षेत्रों में अत्यल्प वर्षा वाली उष्णकटिबंधीय जलवायु भी पर्यावरणीय समस्याओं की एक विशिष्ट शृंखला प्रस्तुत करती है। गरीबी, निरक्षरता और जागरूकता के अभाव ने अनेक मामलों में पर्यावरणीय समस्याओं को बढ़ाया ही है।

ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी, जो कि मुख्यतः लाभकर रोजगार की अनुपलब्धता की वजह से है, लोगों को अपनी घरेलू आय की अनुपूर्ति हेतु जलाऊ लकड़ी व छोटे–मोटे वनोत्पाद एकत्र करने के लिए आसपास के जंगलों में जाने को बाध्य करती है। कृषि चूँकि देश की रीढ़ है और भारवाहक पशु शक्ति का प्रमुख स्रोत, मवेशी बड़ी संख्या में पाले जाते हैं और चरने के लिए वनों में भेज दिए जाते हैं। जलाऊ लकड़ी का प्रयोग कर खाना पकाना न सिर्फ वन विनाश बढ़ाता है, बल्कि वायु में हानिकारक गैसें भी छोड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी मलिन–बस्तियों में समुचित सफाई व्यवस्था का अभाव स्थानीय पर्यावरण को दूषित करता है।

जल और विद्युत आपूर्ति, जन परिवहन एवं अपशिष्ट निपटान जैसी उपयुक्त अवसंरचना के बिना ही शहरी क्षेत्रों में व्याप्त उच्च जनसंख्या सघनता ने अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ पैदा की हैं। उदाहरण के लिए, जन परिवहन के अभाव और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि ने शहरी परिवारों को निजी वाहन रखने को प्रेरित किया है, जिससे ईंधन की खपत बढ़ी है, यातायात संकुलन बढ़ा है, और साथ ही बढ़ा है वाहनों से होने वाला उत्सर्जन!

प्रौद्योगिकीय प्रगति ने भी देश में पर्यावरणीय समस्याएँ बढ़ाने में योगदान दिया है। अनुपचारित अपशिष्ट के निपटान से वायु, जल और मृदा तीनों का प्रदूषण बढ़ा है। कृषि में प्रौद्योगिकीय प्रगति से भूमि पर उर्वरकों के प्रयोग को बढ़ावा मिला है, जिससे भू–प्रदूषण बढ़ा है। भूजल प्रयोग कर जल–गहन फसलें उगाने से भूजल स्तर गिर गया है। अनेक सरकारें निवेश आकर्षित करने के लिए पर्यावरणीय सरोकारों को अनदेखा कर उद्योगों को रियायतें देती हैं। इस प्रक्रिया में उद्योग क्षेत्र में आते तो हैं मगर राज्य को किसी प्रदूषण शरणस्थली में बदल देते हैं!

वर्ष के अक्तूबर–नवंबर मास के आसपास उत्तर भारत में एक विशिष्ट समस्या पराली (stubble) जलाए जाने से उत्पन्न होती है। शरद ऋतु के आगमन के साथ ही उत्तर भारत – विशेषकर पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश – में खेतों की आग अनियंत्रित हो जाती है। पराली जलाना, दरअसल, धान, गेहूँ, आदि खाद्यान्नों की फसल कटाई के बाद बचे ठूंठों को इरादतन आग के हवाले करना है। इस क्रियाकलाप में वायु प्रदूषक के रूप में PM 2.5 मान के महीन कणिका तत्व उत्सर्जित होते हैं, जो कि जन स्वास्थ्य के लिए चिंता का विषय होता है।

कुल मिलाकर, पर्यावरण प्रबंधन को और गंभीर होना होगा तथा आने वाले सालों के लिए इस क्षेत्र में नये आयाम विकसित करने होंगे।

11.4.2 भूमंडलीकरण और पर्यावरणीय समस्याएँ

आज के भूमंडलीकृत विश्व में देशों के बीच सीमाएँ कम ही नजर आती हैं तथा अपने दूरगामी प्रभाव के साथ राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक घटनाएँ परस्पर और जुड़ गई लगती हैं। हम सभी आए दिन भूमंडलीकरण के विविध प्रभावों से दो–चार होते रहते हैं।

वर्ष 2010 में ब्रिटिश पेट्रोलियम के एक रिसते कंटेनर से फैले तेल से पारितंत्र को जो हानि पहुँची वह पर्यावरण के समक्ष भूमंडलीकरण से उत्पन्न खतरों का एक उदाहरण मात्र है। आजकल अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में व्यापक रूप से प्रयुक्त अनेक पदबंधों में से कुछ ही प्रमुखतः नजर आते हैं, जैसे जलवायु परिवर्तन, निर्वनीकरण और प्रदूषण, जो कि संसाधन संग्रामों के इस दौर में हमारी उपलब्धि को दर्शाते हैं।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने प्राकृतिक संसाधनों के परंपरागत उपयोगकर्ताओं के लिए अल्प लाभों वाले गरीब देशों के इन अप्रयुक्त संसाधनों के प्रयोग को और भी बढ़ा दिया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने – खासकर उन्होंने जो कृषि उत्पादों अथवा संसाधित कृषि उपज के व्यापार में लगी हैं – अपने सस्ते और रियायती खाद्य उत्पादों के निर्यात से अनेक गरीब देशों की चिरस्थायी कृषि को बर्बाद कर दिया है। इन कंपनियों द्वारा बीजों के उत्पादन एवं वितरण पर नियंत्रण ने जैव विविधता के विनाश की ओर अग्रसर किया है। दूसरे शब्दों में, जबकि संयुक्त राष्ट्र व अन्य अभिकरण सतत विकास का लक्ष्य हासिल करने की बात करते हैं, भूमंडलीकरण की प्रक्रिया और समृद्धि के संकेंद्रण ने इन उपायों को झुठलाया ही है। खुशहाली के एकतरफा वितरण ने चंद अमीरों के उपभोग स्तरों में कई गुना वृद्धि की है जबकि गरीब को उसके परंपरागत प्राकृतवास से बेदखल ही किया है।

भूमंडलीकरण के पर्यावरणीय प्रभावों पर लेख–निबंध आदि में मुख्यतः दो प्रकार के प्रभावों का उल्लेख मिलता है, यथा प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव। प्रथम, **प्रत्यक्ष प्रभाव** उत्सर्जन के अलावा ऐसी पर्यावरणीय क्षति को भी दर्शाते हैं जो निर्यातकों से आयातकों को माल के भौतिक हस्तांतरण से जुड़ी होती है। इसमें मुख्य रूप से जीवाश्म ईंधन के प्रयोग से होने वाला उत्सर्जन है। साथ ही, दूसरी ओर, अनेक **परोक्ष प्रभाव** देखे जाते हैं जो कि व्यापार एवं प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में वृद्धि के कारण उत्पन्न होते हैं। इन परोक्ष प्रभावों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है – स्केल प्रभाव, संरचना प्रभाव और तकनीक प्रभाव।

- **स्केल प्रभाव** इंगित करता है कि देशों के भीतर ही संसाधनों के कहीं अधिक कुशल आवंटन के कारण विश्व उत्पादन–शक्यता सीमा वक्र अब खिसक गया है। इससे औद्योगिक प्रदूषण आधार पहले से बड़ा हो जाता है, जिसका अर्थ है कि बाकी चीजें यथावत् रहते हुए भूमंडलीय उत्सर्जन पहले से अधिक होगा।
- **संरचना प्रभाव** किसी देश की औद्योगिक संरचना बदलने पर व्यापार उदारीकरण के परिणामस्वरूप होने वाले उत्सर्जन में आई घट–बढ़ को मापता है। उदाहरण के लिए, यदि उदारीकरण किसी देश के सेवा क्षेत्र में फैलता है जबकि वहाँ के भारी उद्योग में वह सिमटता है तो देश का कुल उत्सर्जन संभवतः घटेगा क्योंकि विस्तारशील क्षेत्र अपेक्षाकृत कम उत्सर्जन–गहन होता है।

- **तकनीक प्रभाव** उन प्रणालियों की भरमार को दर्शाता है जिनके माध्यम से वैश्वीकरण उस दर को प्रभावित करता है जिस पर उद्योग एवं घरों द्वारा किया जाने वाला प्रदूषण बढ़ता है। इन प्रणालियों में पर्यावरण संबंधी नियमों व उनकी कड़ाई में बदलाव शामिल होते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन आय वृद्धि अथवा उक्त नियमों के इर्दगिर्द राजनीतिक माहौल के प्रत्युत्तर में होते हैं। तकनीक प्रभाव में वह प्रौद्योगिकी हस्तांतरण भी शामिल होता है जिसे व्यापार से या फिर कहें वैश्वीकरण से सुसाध्य बनाया गया हो।

पर्यावरण संरक्षण हेतु गठित अंतर्राष्ट्रीय अभिकरण अपने सरोकारों का एक बार पुनरावलोकन करें और उनसे अपेक्षित है कि इस दिशा में लिए गये निर्णय क्रियान्वित करने के लिए वे अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति दिखाएँ।

11.5 कॉमन–पूल संसाधन

कॉमन–पूल या सर्वजन सम्पत्ति संसाधन ;ब्च्त्ेद्ध वे साझा संसाधन हैं जिनका स्वामित्व राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, अथवा स्थानीय सरकारों के पास, जातीय समूहों के पास, अथवा अशासकीय व्यक्तियों या निगमों के पास होता है। इनको निर्बाध–प्रवेश संसाधन के रूप में प्रवेश पाने में सक्षम किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे सभी संसाधनों में आर्थिक गतिविधियों के लिए दो महत्वपूर्ण साझा गुण होते हैं –

1) किसी भौतिक अवरोध अथवा कानूनी दस्तावेज के जरिए संसाधन प्रयोग करने से लोगों को रोकना महँगा पड़ता है; तथा
2) किसी एक व्यक्ति द्वारा प्राप्त लाभ दूसरों को उपलब्ध लाभ घटा देता है।

इन संसाधनों का शायद कोई औपचारिक स्वामी न हो, परंतु इन पर किसी प्रकार का स्वामित्व नियंत्रण सामूहिक रूप से रखा जाता है और इन संसाधनों को प्रायः कॉमन–पूल या साझा संपत्ति बतौर नियंत्रित किया जाता है। इन संसाधनों से उत्पादित माल वैयक्तिक रूप से (निजी वस्तुओं के रूप में) उपभोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, वन और चारागाह कॉमन–पूल संसाधन हैं तथा वे हमें जलाऊ लकड़ी और चारा जैसी वस्तुएँ प्रदान करते हैं।

कॉमन–पूल संसाधन प्रयोगकर्ताओं के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे ग्रामीण आजीविका की अनुपूर्ति करते हैं और कुछ ऋतुओं में अथवा फसल खराब होने या फिर किसी अन्य प्रकार के संकट के समय गरीब लोगों के लिए सुरक्षा जाल बन जाते हैं।

कॉमन–पूल संसाधनों को 'सीमित अथवा ऋणात्मक लाभों वाला सार्वजनिक माल' कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि ऊधव आवश्यकता से अधिक लेता है तो माधव व अन्य के लिए अपर्याप्त ही बचेगा।

कई बार इन संसाधनों के प्रयोगकर्ता ऐसा आचरण करने लगते हैं कि जिससे उनकी स्वार्थपरता और अदूरदर्शिता सामने आती है। जानबूझकर किए जाने वाले ऐसे कृत्यों से बचने के लिए लोगों अथवा समुदायों पर **प्रतिबंधात्मक नियम** भी लागू किए जाते हैं ताकि उनसे वह काम करवाया जा सके जिसे करना शायद वे पसंद नहीं करते। ये संसाधन इसीलिए प्रायः संकुलन, अपक्षय अथवा अवनयन संबंधी समस्याओं से घिरे रहते हैं।

कॉमन–पूल संसाधन मुक्त अथवा नियंत्रित सुलभता दर्शाते हैं। ऐसे स्थान जहाँ किसी संसाधन अथवा उसके प्रयोग की सुलभता पर कोई नियंत्रण न हो, मुक्त अथवा **निर्बाध–प्रवेश कॉमन–पूल संसाधन** कहलाते हैं।

जब कोई संसाधन भरपूर आपूर्ति दर्शाता हो तो उसकी सुलभता नियंत्रित करने अथवा उसका प्रयोग सीमित कर देने का कोई औचित्य नहीं होता है। बहरहाल, यदि जनसंख्या भार, औद्योगीकरण, आर्थिक संवृद्धि आदि कारकों की वजह से उस संसाधन की माँग बढ़ती हो और वह अत्यल्प रह जाता हो तो किसी कॉमन–पूल निर्बाध–प्रवेश व्यवस्था का कोई औचित्य नहीं रह जाता है।

उक्त संसाधनों के संचालन संबंधी विभिन्न मॉडल विभिन्न लोगों द्वारा सुझाए गए हैं। इनमें से कॉमन–पूल संसाधन प्रबंधन संबंधी दो प्रमुख वैचारिक मॉडल सामने आते हैं – पूँजीवादी मॉडल और समाजवादी मॉडल।

- **पूँजीवादी मॉडल** के अनुसार, साझा अधिकार के अधीन संसाधनों का अवनयन निश्चित होता है। अतः सार्वजनिक संसाधनों का निजीकरण ही समस्या का एकमात्र व्यवहार्य समाधान होता है।
- **समाजवादी मॉडल** के अनुसार, ग्रामीण कृषिक जनसमुदाय के बीच संसाधनों के अन्यायपूर्ण वितरण से उत्पन्न आर्थिक दरिद्रता ही संसाधन विनाश की प्रेरक शक्ति होती है।

अतएव, सार्वजनिक संसाधनों का समूहीकरण अथवा राष्ट्रीयकरण ही संसाधन प्रबंधन की एक न्यायपूर्ण रणनीति के रूप में कारगर सिद्ध होता है।

11.5.1 कॉमन्स की त्रासदी

निर्बाध प्रवेश और उचित प्रबंधन के अभाव में अति उपयोग की वजह से समय के साथ–साथ कॉमन–पूल संसाधनों (CPRs) का अवक्रमण होता जा रहा है। इस बात को समझने के लिए किसी ऐसे खेती–बाड़ी वाले गाँव को लें जहाँ ग्रामवासी अपनी गायों को किसी सार्वजनिक मैदान में चराते हों। कोई भी ग्रामवासी इस चारागाह को उस हद तक प्रयोग करेगा जहाँ तक कि उसकी निजी सीमांत लागत उसकी निजी सीमांत आय के बराबर रहती हो। परंतु ऐसा करने में प्रत्येक ग्रामवासी कुछ न कुछ बाह्य लागत पेश करता है, जो कि अन्य सभी ग्रामवासियों द्वारा उनकी गायों के लिए पहले से कम उपलब्ध चारे के लिहाज से उनके द्वारा वहन किया जाएगा क्योंकि इससे उनकी गायों की उत्पादकता घटती है।

चूँकि हर ग्रामवासी किसी भी अतिरिक्त गाय को चराने की सामाजिक लागत को अनदेखा करता है, इस साझा मैदान पर बहुत ज्यादा गायें चराई जाएँगी। इस प्रकार, संसाधन दोहन की सामाजिक लागत वैयक्तिक निजी लागत से कहीं अधिक बैठती है। इस लिहाज से, **निर्बाध–प्रवेश कॉमन–पूल संसाधन** बटोर लेने योग्य सरकारी माल से गहरा संबंध रखते हैं।

उक्त बात को गैरेट हार्डिन ने वर्ष 1968 में लिखे अपने एक निबंध 'द ट्रैजेडी ऑफ द कॉमन्स' में स्पष्ट किया है। लेखक के अनुसार, यदि लोग स्वतंत्र रूप से, युक्तिपूर्वक और अपने वैयक्तिक हितों के अनुपालन को ही ध्यान में रखते हुए व्यवहार करते हैं तो वे अपने

समुदायों के सार्वजनिक हितों के विरुद्ध ही जाएँगे और धरती के प्राकृतिक संसाधनों को समाप्त कर बैठेंगे। सार्वजनिक संसाधनों का यह अत्यधिक प्रयोग ही 'कॉमन्स की त्रासदी' (Tragedy of the Commons) कहलाता है। अंतर्राष्ट्रीय जलक्षेत्र में अत्यधिक मत्स्यग्रहण, निर्वनीकरण, और अत्यधिक आखेट की वजह से पशुओं की अनेक प्रजातियों का विलुप्ति के कगार पर होना इस परिघटना के ही कुछ उदाहरण हैं।

वास्तव में, किसी संसाधन को निजी अधिकार दिया जाना ही उसके कुशल प्रयोग को सुनिश्चित कर सकता है। ऐसे स्थानों में जहाँ इस प्रकार के अधिकार सौंपे जाने में कोई दिक्कत हो तो अति प्रयोग ऐसी सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से रोका जा सकता है जो व्यक्तियों द्वारा संसाधन के प्रयोग को सीमित कर देने में पर्याप्त रूप से सक्षम हो। ऐसे संसाधनों को फिर **वर्जित–प्रवेश कॉमन–पूल संसाधन** कहा जाता है।

यद्यपि कुछ कॉमन–पूल संसाधनों पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं, अब भी ऐसे कॉमन–पूल संसाधन बड़ी संख्या में हैं जिन्हें भू–संसाधन, वन संसाधन, जल संसाधन, और मात्स्यकी संसाधन जैसे किसी वृहत् शीर्षक के तहत रखा जा सकता है।

भू–संसाधन

कॉमन–पूल भू–संसाधन का अर्थ है – किसी विशिष्ट प्रकार के संपत्ति अधिकारों से पहचान प्राप्त भूखंड। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (NSS) की परिपृच्छा के दायरे में आने वाली भूसम्पत्तियाँ हैं – पंचायत भूसम्पत्तियाँ, शासकीय राजस्व भूसम्पत्तियाँ, ग्राम सर्वजन भूसम्पत्तियाँ, ग्राम गहाई भूसम्पत्तियाँ, अवर्गीकृत वन भूसम्पत्तियाँ, वन प्रदेश एवं व्यर्थ भूमि, नदी तट, तथा कॉमन–पूल संसाधन बतौर प्रयुक्त अन्य परिवारों की भूसम्पत्तियाँ।

वन संसाधन

भूमि की एक अन्य श्रेणी जिसके लिए सर्वजन सम्पत्ति अधिकार देखे जा सकते हैं, वनों के तहत आने वाली भूमि है। वे अवर्गीकृत वन जो बहुत कम उत्पादकता दर्शाते हैं, स्थानीय समुदायों के इस्तेमाल के लिए हमेशा खुले रहते हैं। तदनुसार, संरक्षित और अवर्गीकृत दोनों ही प्रकार के वन सर्वजन–सम्पत्ति वन संसाधन का हिस्सा माने जाते हैं। यह वन भाग, इसीलिए, कुल वन क्षेत्र घटा वे आरक्षित वन होता है जिनके लिए सर्वजन सम्पत्ति अधिकारों का अस्तित्व माना जाता है।

जल संसाधन

जल के ऐसे विविध संसाधन हैं जो जन सामान्य के अधिकार क्षेत्र में हैं, और इनका एक अहम हिस्सा सर्वजन संसाधनों की श्रेणी में रखा गया है। इनके उदाहरण हैं – नदियों, तालाबों एवं प्राकृतिक झीलों का प्रवाह, भूजल, दलदली भूमि एवं सदाबहार वन क्षेत्र, और ऐसे ही अन्य जलाशय। बाँध एवं नहरें, नलकूप व अन्य कुएँ, तथा सभी प्रकार की पेयजल आपूर्ति भी अपने–अपने संपत्ति अधिकारों पर निर्भर करते हुए कॉमन–पूल संसाधनों की इसी श्रेणी में आते हैं।

दुर्भाग्यवश, संपत्ति अधिकारों (यथा परंपरागत अधिकार, सामुदायिक अधिकार तथा मूलभूत आवश्यकता मानवाधिकार) पर अनेक बार वाद–विवाद और बहस किए जाने के बावजूद

भारत में जल को अभी तक कॉमन–पूल संसाधन घोषित नहीं किया गया है, हालाँकि परोक्ष रूप से जल–नीति दस्तावेज का हवाला गाहे–बगाहे दिया जाता रहा है।

सामान्यतः भारत में जल संसाधन कॉमन–पूल व्यवस्था के तहत ही हैं। सिंचाई के लिए नहरों की व्यवस्था सरकार और समुदायों द्वारा संयुक्त रूप से की जाती है। परंपरागत रूप से, तालाब, गाँव के पोखर व झीलें – जिन सभी को कॉमन–पूल संसाधन माना जाता है – पेयजल के लिए, पशुपालन के लिए, कपड़े धोने के लिए, मत्स्य पालन के लिए एवं स्नान के लिए तथा अनेक साफ–सफाई संबंधी क्रियाकलापों के लिए जल के स्रोत हैं।

कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य के निर्बाध प्रवेश और सीमित संसाधनों के असीमित उपभोग से ऐसे सार्वजनिक संसाधन समाप्त ही हो जाएँगे। हार्डिन का मानना था कि चूँकि मनुष्य असीम रूप से प्रजनन करने के लिए विवश है, धरती के संसाधन अंततः अति दोहन का दंश झेलेंगे। उनकी नजर में मानव जाति को कॉमन–पूल संसाधन इस्तेमाल करने के अपने तरीके में आमूल–चूल परिवर्तन की आवश्यकता है ताकि किसी भी भावी आपदा को टाला जा सके। साथ ही, यह सतत विकास की राह पर चलते रहने तरीका भी होगा।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए 2

नोटः i) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।
ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपनी प्रगति की जाँच करें।

1) भारत की पर्यावरणीय समस्याएँ विकसित देशों की पर्यावरणीय समस्याओं से किस प्रकार भिन्न हैं?

……

……

……

2) वैश्वीकरण पर्यावरणीय समस्याओं में किस प्रकार बढ़ोतरी कर रहा है? स्पष्ट करें।

……

……

……

3) कॉमन–पूल संसाधनों के क्या अभिलक्षण होते हैं? स्पष्ट करें।

……

……

……

4) 'कॉमन्स की त्रासदी' से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट करें।

……

……

11.6 सारांश

इस इकाई की शुरुआत हमने संधारणीयता की संकल्पना को समझते हुए की। हमारी भावी पीढ़ी को उन संसाधनों की आवश्यकता होगी जिन्हें आज हम ताबड़–तोड़ इस्तेमाल किए जा रहे हैं और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करने की दिशा में अनेक देशों के उन्मुखीकरण को और अधिक गंभीर होने की आवश्यकता है।

अपशिष्ट पदार्थ को अपने में मिला लेने की मिट्टी की क्षमता सीमित है और वर्तमान उपभोग प्रतिमान दर्शाते हैं कि हम एक ऐसी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं कि जो भविष्य के लिए खतरे की घंटी बजा रही है। ऐसे अनेक संसाधन हैं जो अपनी प्रकृति में नवीकरणीय हैं और उनकी लोकप्रियता बढ़ रही है, परंतु उनका लागत–प्रभावी होना अभी शेष है।

इस इकाई में उठाई गईं पर्यावरणीय समस्याएँ विविध और गंभीर प्रकृति की रहीं। प्रदूषण घटाने और स्वच्छ पर्यावरण उपलब्ध कराने की दिशा में प्रयासों को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर अधिक नियोजित और प्रभावी बनाए जाने की आवश्यकता है।

अनेक प्रकार की पर्यावरणीय समस्याओं का मुख्य कारण कॉमन–पूल संसाधन ही होते हैं। इन संसाधनों के लिए कोई स्पष्ट रूप से परिभाषित संपत्ति अधिकार नहीं होते, जिस वजह से ऐसे संसाधनों के आसपास रहने वाले लोग प्रायः उनका अति प्रयोग करने लगते हैं। हमने इस बात पर चर्चा की कि यह अति प्रयोग कितना खतरनाक हो सकता है।

कुल मिलाकर हमने उन पर्यावरणीय समस्याओं के विषय में जाना जो आज हमारे सामने हैं और यदि हम सतत विकास की संकल्पना को वांछित महत्व नहीं देते हैं तो फिर हमारी भावी पीढ़ियों के सामने भी होंगी।

11.7 शब्दावली

सतत विकास — सतत विकास की संकल्पना संसाधनों के प्रयोग में कुशलता की बजाय न्यायपूर्णता पर अधिक जोर देती है। इसका अर्थ है कि संसाधन किसी समतावादी तरीके से ही प्रयोग किए जाने चाहिए, जो कि अधिकांश लोगों के जीवन की गुणवत्ता सुधारने वाला होगा।

नवीकरणीय संसाधन — नवीकरणीय संसाधनों को नाना रूपों के बीच असीम और प्रतिस्थापन योग्य माना जाता है।

कॉमन–पूल संसाधन — कॉमन–पूल संसाधन आमतौर पर निर्बाध–प्रवेश संसाधन होते हैं और अनेक लोगों द्वारा अपनी आजीविका चलाने के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

कॉमन्स की त्रासदी — यदि लोग स्वतंत्र रूप से, युक्तिपूर्वक और अपने वैयक्तिक हितों के अनुपालन को ही ध्यान में रखते हुए व्यवहार करते हैं तो वे अपने समुदायों के सार्वजनिक हितों के विरुद्ध ही जाएँगे और धरती के प्राकृतिक संसाधनों को

समाप्त कर बैठेंगे। सार्वजनिक संसाधनों का यह अत्यधिक प्रयोग ही 'कॉमन्स की त्रासदी' कहलाता है।

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

हुसैन, अहमद एम. (2004), *प्रिन्सिपल्स ऑफ इन्वायरमेंटल इकोनॉमिक्स*, दूसरा संस्करण, रूटलेज, टेलर एंड फ्रांसिस ग्रुप।

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) (संदर्भ पाठांश 11.2) प्राकृतिक संसाधनों को अर्थव्यवस्था के विकास के लिए मूलभूत आवश्यकताओं के रूप में देखा जाता है, परंतु वे सीमित हैं और विशिष्ट स्थानों पर ही उपलब्ध हैं।
2) (देखें पाठांश 11.2) समय के साथ यह आशा की जाती है कि प्रौद्योगिकी, आय और लोगों की प्राथमिकताओं में परिवर्तन होंगे। बदलते सापेक्षिक अभावों और उनकी जानकारी के उत्तर के रूप में प्रौद्योगिकी काफी हद तक बदल सकती है। आय भी स्थिर नहीं रहेगी और पीढ़ी दर पीढ़ी वरीयताएँ अलग–अलग होंगी।
3) (पाठांश 11.3 देखें) जल विद्युत, भूतापीयऊर्जा, पवन ऊर्जा, सौर ऊर्जा आदि।
4) (संदर्भ धारा 11.3) चूँकि प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग उत्तरोत्तर तेजी से बढ़ता जा रहा है, अक्षय संसाधनों की कई किस्मों को उनके उपभोग की गति से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है। इसलिए इन संसाधनों के विनाश/विलुप्त होने का भय है।

बोध प्रश्न 2

1) (पाठांश 11.4.1 देखें) भारत एक विकासशील अर्थव्यवस्था है जिसमें प्रति व्यक्ति आय कम, उच्च जनसंख्या घनत्व, कृषि पर निर्भर श्रम शक्ति और ग्रामीण क्षेत्रों का उच्च प्रतिशत है।
2) (पाठांश 11.4.2 देखें) वर्ष 2010 में ब्रिटिश पेट्रोलियम के एक रिसते हुए कंटेनर से फैले तेल से पारिस्थितिकी तंत्र को होने वाली क्षति उन खतरों के उदाहरणों में से एक है जो वैश्वीकरण पर्यावरण के लिए उत्पन्न कर रहा है।
3) (संदर्भ पाठांश 11.5) कॉमन–पूल संसाधन आर्थिक गतिविधियों के लिए महत्व की दो विशेषताओं को साझा करते हैं, यथा – (1) व्यक्तियों को भौतिक बाधाओं या कानूनी साधनों के माध्यम से संसाधन का उपयोग करने से बाहर करना महँगा पड़ता है, और (2) किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त लाभ दूसरों के लिए उपलब्ध लाभ कम कर देते हैं ।
4) (संदर्भ पाठांश 11.5.1) गैरेट हार्डिन ने तर्क दिया कि यदि व्यक्ति स्वतंत्र रूप से एवं तर्कसंगत रूप से कार्य करते हैं और अपने व्यक्तिगत हितों को आगे बढ़ाने पर ही ध्यान केंद्रित करते हैं तो वे अंत में अपने समुदायों के सामान्य हितों के विरुद्ध जाकर पृथ्वी ग्रह के प्राकृतिक संसाधनों को समाप्त कर देंगे। सार्वजनिक संसाधनों के इस अति प्रयोग को ''कॉमन्स की त्रासदी'' कहा जाता है।

इकाई 12 बाह्यताएँ और राज्य पर्यावरण विनियमन *

संरचना

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 बाह्यता और उसके प्रकार

12.2.1 सकारात्मक बाह्यता

12.2.2 नकारात्मक बाह्यता

12.3 कोस प्रमेय

12.4 आर्थिक गतिविधि और जलवायु

12.5 राज्य पर्यावरण विनियमन

12.5.1 पिगोवियन कर

12.5.2 उत्सर्जन कर

12.6 सारांश

12.7 शब्दावली

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- सकारात्मक और नकारात्मक बाह्यताओं को सोदाहरण स्पष्ट कर सकेंय
- बाह्यताओं के आर्थिक परिणामों पर चर्चा कर सकेंय
- आर्थिक क्रियाकलाप का संबंध जलवायु परिवर्तन से जोड़ सकेंय
- पर्यावरण के विनियामक के रूप में राज्य की भूमिका स्पष्ट कर सकेंय तथा
- पिगोवियन करों और उनके औचित्य पर चर्चा कर सकें।

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई का आरंभ हम बाह्यता और उसके प्रकार संबंधी संकल्पना को समझते हुए करेंगे।

* डॉ. निधि तेवतिया, असिस्टेंट प्रोफेसर, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठए इग्नू कृत

इकाई में बाह्यताओं के आर्थिक परिणामों पर भी चर्चा होगी ताकि समझा जा सके कि उत्पादन की मूल गतिविधि जलवायु को कैसे प्रभावित करती है।

आर्थिक गतिविधि के कारण होने वाली पर्यावरणीय क्षति को कम करने के लिए राज्य की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। अतः इस इकाई में हम इस संबंध में राज्य की भूमिका पर भी चर्चा करेंगे।

तदंतर, पिगोवियन कर अथवा उत्सर्जन कर जैसे विशिष्ट कार्यतंत्रों पर भी विस्तृत चर्चा होगी।

12.2 बाह्यता और उसके प्रकार

पिछली इकाई में हमने देखा कि यदि संसाधन स्वामित्व स्पष्टतः परिभाषित नहीं होगा तो बाजार तंत्र सफल नहीं रहेगा। संपत्ति चूँकि सर्वजन संसाधन होती है, लोग न तो पूरा–पूरा लाभ उठाने के बारे में सोच सकते हैं और न ही अपने कार्यकलापों की लागत पूरी तरह समझ सकते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि ये लोग लागत और लाभों को आकस्मिक अथवा बाहरी मानकर चलते हैं।

इसी प्रकार, एक और स्थिति होती है जहाँ लोग अपने लेन–देन / क्रियाकलाप का पूरा ध्यान रखते हैं। इसी स्थिति का उल्लेख करने के लिए एक पारिभाषिक शब्द है – बाह्यता। दरअसल, बाह्यताएँ ऐसी दशाएँ हैं जो तब उत्पन्न होती हैं जब किन्हीं लोगों के कार्यकलाप अन्य लोगों के कल्याण अथवा उपयोगिता को सीधे प्रभावित करते हों।

उपर्युक्त प्रभाव सकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकते हैं। साथ ही, बाह्यताएँ उत्पादन अथवा उपभोग से जुड़ा कोई अधिप्लावन प्रभाव भी दर्शाती हैं। बाह्यताओं को 'समाप्य' अर्थात् घटने वाली और 'असमाप्य' अर्थात् न घटने वाली के रूप में भी भिन्न माना जा सकता है। किसी वृक्ष से गिरने वाले फूल समाप्य बाह्यता रखते हैं क्योंकि यदि कोई एक व्यक्ति ये फूल ले लेता है तो कोई दूसरा व्यक्ति इन्हें नहीं ले सकता। फूलों की महक, बहरहाल, एक असमाप्य बाह्यता है क्योंकि यदि कोई एक व्यक्ति इस महक का आनन्द लेता है तो इससे किसी भी अन्य व्यक्ति के लिए उस महक का आनन्द कम नहीं होगा।

कई बार अधिप्लावन प्रभाव अर्थात् छलकन दर्शाने वाली अनेक सरकारी नीतियों में बाह्यता की समस्या उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के लिए, सिंचाई के उद्देश्य से किसानों को दी जाने वाली मुफ्त बिजली के परिणामस्वरूप भूजल का अति दोहन किया जाने लगता है, जिससे भौम जलस्तर घट जाता है और अन्य लोगों के लिए जल की उपलब्धता कम हो जाती है।

12.2.1 सकारात्मक बाह्यता

जब किसी व्यक्ति के क्रियाकलापों का प्रभाव किसी अन्य व्यक्ति पर अनुकूल होता है तो इसे सकारात्मक बाह्यता (positive externality) कहा जाता है। मान लीजिए कि मुझे अपने पड़ोसी की पुष्प–वाटिका निहारने में आनन्द आता है – यह एक *सकारात्मक* उपभोग बाह्यता का उदाहरण है।

इस पड़ोसी के घर में बागवानी के कार्य ने मुझे कुछ लाभ प्रदान किया है। उस पुष्प–वाटिका के रखरखाव में मैंने अपना कोई समय खर्च नहीं किया है, परंतु फिर भी मैं

उससे एक सकारात्मक उपयोगिता हासिल कर रहा हूँ। इसी प्रकार, जब किसी फर्म का उत्पादन अन्य फर्मों की उत्पादन संभावनाओं को अनुकूल रूप से प्रभावित करता है तो सकारात्मक बाह्यता जन्म लेती है।

चलिए, एक सरल–सा उदाहरण लेते हैं। मान लीजिए कि एक सेब का बाग किसी मधुमक्खी–पालन केंद्र की बगल में ही स्थित है (नाना प्रकार के फल और काष्ठफल वृक्षों को बौर आने पर परागण क्रिया के लिए मधुमक्खियों की आवश्यकता होती है ताकि उनके फल तैयार हो सकें)।

उक्त केंद्र की मधुमक्खियाँ इस फलोद्यान को बड़ी संख्या में सेब की फसल देने में मदद करेंगी। ऐसी स्थिति में जहाँ कोई सकारात्मक बाह्यता विद्यमान होती है –

सामाजिक लाभ = निजी लाभ + बाह्य लाभ

साथ ही, बाह्य लाभ > 0

अतएव, सामाजिक लाभ > निजी लाभ

नीचे दिए गए चित्र 12.1 में वक्र D निजी लाभ अथवा उस उत्पाद की माँग दर्शाता है जिसमें सकारात्मक बाह्यता शामिल हो। यहाँ MSB वक्र सीमांत सामाजिक लाभ निरूपित करता है, जो कि निजी लाभ में बाह्य लाभ जोड़कर अवकलित किया जाता है। इसका अर्थ है कि D वक्र और MSB वक्र के बीच अंतर बाहरी लाभ ही है।

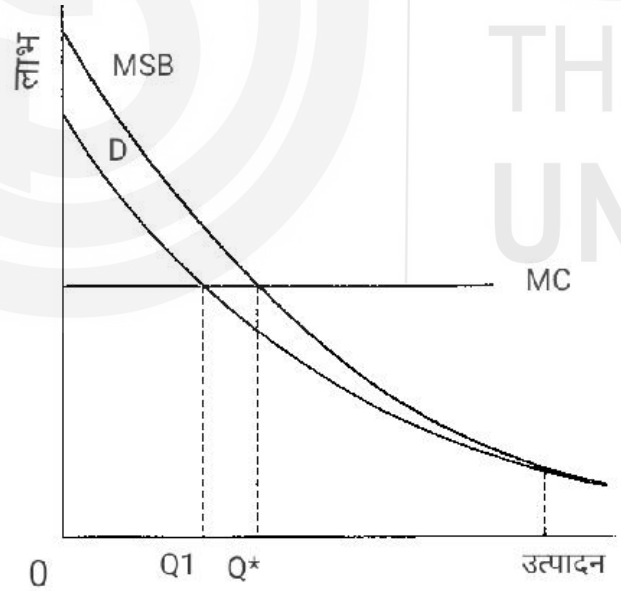

चित्र 12.1: सकारात्मक बाह्यता

कोई अचर सीमांत लागत (MC) ज्ञात होने पर निजी साम्यावस्था मात्रा Q^1 की ओर अग्रसर करती है, परंतु सामाजिक इष्टतम MC और MSB के प्रतिच्छेदन से ही हासिल होगा। यह प्रतिच्छेदन हमें मात्रा Q* देता है। अतः हम कह सकते हैं कि यदि सकारात्मक बाह्यता पर विचार न किया जाए तो उत्पाद की कम मात्रा प्रदर्शित होती है और बाजार में उसका विनिमय $Q^1 < Q^*$ के रूप में होता है।

अब यह स्पष्ट है कि किसी सकारात्मक बाह्यता की विद्यमानता में सामाजिक लाभ और निजी लाभ के बीच एक स्पष्ट अपसरण देखा जा सकता है, जो कि उत्पादन के सामाजिक इष्टतम स्तर से कम की ओर अग्रसर करता है।

12.2.2 नकारात्मक बाह्यता

नकारात्मक बाह्यता एक ऐसा बाहरी प्रभाव है जो किसी तीसरे पक्ष पर लागत डाल देती है। उदाहरण के लिए, मैं कोई मोटरवाहन नहीं चलाता मगर स्थानीय मोटरवाहनों द्वारा उत्पन्न प्रदूषण मेरे स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डालता है अथवा मेरा पड़ोसी सुबह–सुबह तेज संगीत बजाना पसंद करता है जबकि मैं उस समय सोना चाहता हूँ। ये सभी उदाहरण *नकारात्मक* उपभोग बाह्यताओं के हैं।

इसी प्रकार, एक नकारात्मक उत्पादन बाह्यता तब जन्म लेती है जब किसी एक फर्म की उत्पादन संभावनाएँ किसी अन्य फर्म के विकल्पों को हानिप्रद रूप से प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, किसी नदी में सक्रिय मत्स्य उद्योग उजान पर स्थित एक इस्पात उद्योग की इकाई द्वारा जल में छोड़े जाने वाले प्रदूषकों से चिंतित है। ऐसा करना मछलियों के लिए हानिकारक होगा और यह मत्स्य उद्योग की आय को भी प्रभावित करेगा। ऐसी स्थिति में जहाँ कोई *नकारात्मक* बाह्यता विद्यमान होती है –

सामाजिक लागत = निजी लागत + बाह्य लागत

साथ ही, बाह्य लागत > 0

अतएव, सामाजिक लागत > निजी लागत

नीचे दिए गए चित्र 12.2 में वक्र MC उत्पाद की निजी लागत दर्शाता है, जिसमें नकारात्मक बाह्यता शामिल है। यहाँ MSC वक्र सीमांत सामाजिक लागत निरूपित करता है, जो कि बाह्य लागत निजी लागत में जोड़कर अवकलित किया जाता है। इसका अर्थ है कि MC वक्र और MSC वक्र के बीच अंतर बाहरी लागत ही है।

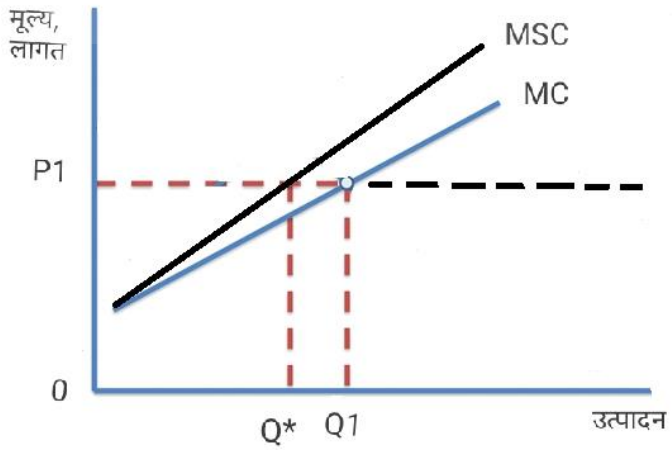

चित्र 12.2: नकारात्मक बाह्यता

एक क्षैतिज माँग वक्र (P_1) ज्ञात होने पर निजी साम्यावस्था Q^1 की ओर अग्रसर करती है, परंतु सामाजिक इष्टतम MSC और माँग वक्र के प्रतिच्छेदन पर हासिल होगा। यह प्रतिच्छेदन हमें मात्रा Q* देता है। अतः हम कह सकते हैं कि यदि नकारात्मक बाह्यता पर

विचार न किया जाए तो उत्पाद की पहले से कहीं अधिक मात्रा प्रदर्शित होती है और बाजार में इसका विनिमय $Q^1 > Q^*$ के रूप में होता है।

अब यह स्पष्ट है कि किसी नकारात्मक बाह्यता की विद्यमानता में सामाजिक लागत और निजी लागत के बीच एक स्पष्ट अपसरण देखा जा सकता है, जो कि उत्पादन के सामाजिक इष्टतम स्तर से अधिक की ओर अग्रसर करता है।

12.3 कोस प्रमेय

बाह्यताएँ आम तौर पर दो कारणों से उत्पन्न होती हैं। प्रथम, विचाराधीन संसाधन अथवा उत्पाद अपने नितांत स्वभाव से उपभोग में गैर–प्रतिद्वंद्वी हो। इस प्रकार का कोई भी उत्पाद संयुक्त उपभोग के अधीन होता है। दूसरे, प्राकृतिक अथवा तकनीकी कारणों से बाह्यता को आंतरीकृत करने की लेन–देन लागत बहुत अधिक हो। इस्पात उद्योग और मत्स्य उद्योग के उदाहरण में नदी को एक कॉमन–पूल संसाधन के रूप में देखा जाता है, और इस कारण, किसी को भी उसे प्रयोग करने से रोका नहीं जा सकता। तदनुसार, नदी का अनैकांतिक प्रयोग ही किसी बाह्यता को कायम रखने को बाध्य करता है। यह अनैकांतिकता (non-exclusiveness) इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि विचाराधीन संसाधन गैर–प्रतिद्वंद्वी है, और तदनुसार, संयुक्त उपभोग के अधीन है।

उपर्युक्त के अलावा, अनैकांतिकता इस तथ्य से भी जन्म लेती है कि संसाधन (नदी) का स्वामित्व स्पष्टतः परिभाषित नहीं था – इसी कारण इसे सर्वजन सम्पत्ति (common property) माना गया। अतः हम इस बात को सामान्य नियम का रूप दे सकते हैं कि अपवर्जकता (अनैकांतिकता) का अभाव बाह्यता का मूल कारण नहीं होता। यदि किसी पड़ोसी की वाटिका आपके लिए सकारात्मक उपभोग बाह्यता उत्पन्न करती है तो इस प्रकार के कार्यकलाप का उपयोग (उपभोग) करने से आपको वर्जित करने का कोई आर्थिक औचित्य नहीं होगा। निस्सन्देह, अपने घर के चारों ओर एक ऊँची पक्की दीवार बनाकर आपको व अन्य पड़ोसियों को वर्जित किया जाना संभव है। बहरहाल, इस काम में अतिरिक्त लागत आएगी।

उक्त बाह्यताओं के आंतरीकरण (निवारण) से जुड़ी लागत का वर्णन करने के लिए सर्वाधिक प्रयुक्त आर्थिक शब्दावली है – *लेन–देन लागत*। मोटे तौर पर, लेन–देन लागत में गैर–प्रयोक्ता वर्जित करके और स्वामित्व अधिकार लागू करके संपत्ति के स्वामित्व का उल्लेख करने के उद्देश्य से उपगत कोई भी परिव्यय शामिल होता है। यही इसका अभिप्रेत प्रभाव होगा यदि, वास्तव में, हमारे उदाहरण में पड़ोसी अपनी स्पष्टतः मान्य संपत्ति सीमा के इर्दगिर्द एक पक्की दीवार खड़ी कर देने का फैसला करता है।

अब हम जान चुके हैं कि यदि बाह्यता उत्पन्न करने वाले किसी उत्पाद/सेवा पर स्वामित्व अधिकार सुस्पष्ट न हों तो समस्या खड़ी हो जाती है। यदि A को लगता है कि उसे धूम्रपान का अधिकार है और B को विश्वास है कि स्वच्छ वायु उसका अधिकार है तो विवाद उत्पन्न होता है। अतः हम कह सकते हैं कि बाह्यताओं के साथ व्यावहारिक समस्याएँ आम तौर पर असंतोषजनक ढंग से परिभाषित स्वामित्व अधिकारों के कारण पैदा होती हैं। मेरे पड़ोसी को लगता है कि सुबह–सवेरे तेज संगीत बजाना उसका अधिकार है जबकि मेरे अनुसार उस समय निर्विघ्न नींद लेना मेरा अधिकार है। इस्पात उद्योग अपने

सभी प्रदूषक नदी में बहा देना अपना अधिकार मानता है जबकि मत्स्य–पालन उद्योग के अनुसार उस नदी में मत्स्य प्रजनन करना उनका अधिकार है।

वर्ष 1960 में अर्थशास्त्री रोनाल्ड कोस ने स्वामित्व अधिकार उपागम विकसित किया। इस उपागम के अनुसार, बाह्यता की समस्या का एक प्रभावशाली हल निकाला जा सकता है बशर्ते संपत्ति अधिकार सुस्पष्ट हों, और इस समाधान का नाम है – *कोस प्रमेय*। इस प्रमेय के अनुसार, संसाधनों का कुशल आवंटन और परेटो–उपयुक्त बाह्यता का समाधान केवल निम्नलिखित अवधारणाओं के साथ ही संभव होगा –

i) शून्य लेन–देन लागत – दो पक्षों के बीच सौदाकारी प्रक्रिया में शामिल लागत कोई अस्तित्व नहीं रखती।

ii) सुस्पष्ट स्वामित्व अधिकार – किसी भी एक पक्ष के पास अथवा दोनों ही पक्षों के पास सुस्पष्ट स्वामित्व अधिकार होते हैं।

iii) बाजार में पूर्ण प्रतिस्पर्धा दिखाई देती है।

iv) कोसियन समाधान के साथ कोई आय अथवा धन–संपत्ति प्रभाव लागू नहीं होते।

v) कोई निःशुल्क लाभभागी प्रभाव नहीं – क्योंकि सभी पक्षों के पास सुस्पष्ट स्वामित्व अधिकार होते हैं।

यदि स्वामित्व अधिकार सुस्पष्ट हों (इस बात पर ध्यान दिए बिना कि किस पक्ष को स्वामित्व अधिकार प्राप्त है), और लोगों को आपस में मोलभाव करने की सुविधा देने वाले कार्यतंत्र सुचारु हों तो लोग बाह्यताएँ उत्पन्न करने हेतु अपने अधिकारों का लेन–देन ठीक उसी प्रकार कर सकेंगे जैसे कि वे सामान्य वस्तुओं के उत्पादन एवं उपभोग हेतु अपने अधिकार लेते–देते हैं।

चलिए, इसे एक उदाहरण के माध्यम से समझते हैं। मान लीजिए कि इस्पात कारखाने द्वारा नदी के उजान पर छोड़ा गया बहिःस्राव उस मत्स्य–पालन केंद्र का लाभ घटा देता है जो निचान पर अवस्थित है। यहाँ इस्पात कारखाने और मत्स्य–पालन केंद्र के बीच विवाद इसलिए है कि उनकी आर्थिक गतिविधियों में एक नदी का संयुक्त प्रयोग शामिल है।

यह दर्शाने के लिए कि किसी स्वामित्व अधिकार उपागम (कोस प्रमेय) का प्रयोग कर इस समस्या को कैसे हल किया जाए, हम आरंभ में यह मानकर चलते हैं कि नदी प्रयोग संबंधी कानूनी अधिकार मत्स्य उद्योग के पास हैं। अतः यदि मत्स्य–पालन केंद्र चाहे तो वह इस्पात कारखाने के लिए नदी की सुलभता पूरी तरह रोक दे। तब इस्पात कारखाने को अपना अपशिष्ट नदी में बहाने की अनुमति नहीं होगी।

नीचे दिए गए चित्र 12.3 में इस स्थिति को मूलबिंदु O से निरूपित किया गया है, जहाँ इस्पात कारखाने से नदी में उत्सर्जित अपशिष्ट की मात्रा शून्य है। इसका अर्थ है कि इस्पात कारखाने को अपने वर्तमान क्रियाकलाप से उत्पन्न अपशिष्ट (कुल 200 इकाइयाँ) के निपटान का कोई वैकल्पिक तरीका खोजना होगा। लेकिन, क्या यह कोई स्थायी समाधान होगा? यहाँ चित्र 12.3 में प्रस्तुत MDC (सीमांत क्षतिपूर्ति लागत) और MCC (सीमांत नियंत्रण लागत) वक्र ज्ञात होने पर इस प्रश्न का उत्तर होगा – नहीं।

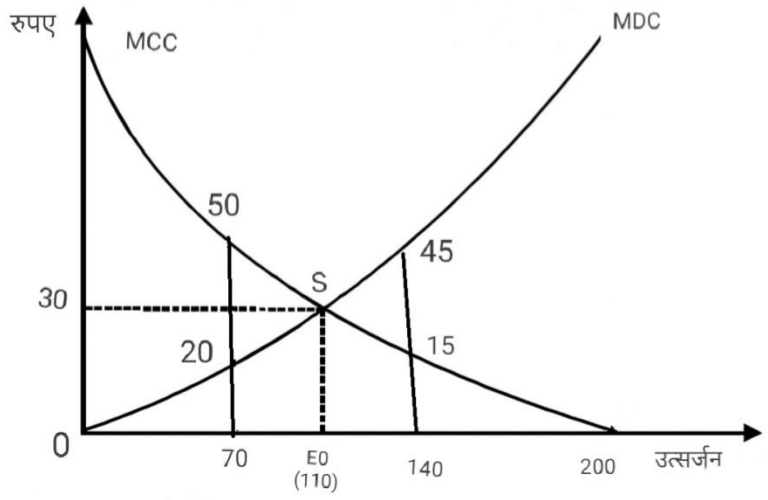

चित्र 12.3: कोस प्रमेय

आइए, अब इसका कारण जानते हैं।

जब इस्पात कारखाने से उत्सर्जित अपशिष्ट E_O (110 इकाइयाँ) से कम है तो हम देखते हैं कि MCC का मान MDC के मान से अधिक है। उदाहरण के लिए, नदी में छोड़े जाने वाले अपशिष्ट की 70वीं इकाई के लिए मत्स्य–पालन केंद्र की MDC का मान ₹20 है। तथापि, यही परिणाम प्राप्त करने के लिए इस्पात कारखाने की लागत ₹50 आती है। आप देखेंगे कि यह ₹50 ही अपशिष्ट की 130वीं इकाई (200 – 70) का उपचार (सफाई) की MCC है। तदनुसार, इस स्थिति में इस्पात कारखाने के सामने अपने औद्योगिक अपशिष्ट निपटान हेतु नदी प्रयोग करने का अधिकार पाने के लिए मत्स्य–पालन केंद्र को माली रिश्वत पेश करने का प्रलोभन है। उदाहरण के लिए, अपने अपशिष्ट की 70वीं इकाई नदी में छोड़ने के लिए इस्पात कारखाना मत्स्य–पालन केंद्र को ₹20 से लेकर ₹50 तक का शुल्क चुकाने को इच्छुक होगा। यह दोनों पक्षों के लिए स्वीकार्य होना चाहिए।

उक्त मत्स्य–पालन केंद्र के लिए ₹20 से अधिक का भुगतान नदी में 70वीं इकाई डालने से उसके मत्स्य–पालन कार्य को पहुँचने वाली क्षति की भरपाई से कहीं अधिक होगा। इसी प्रकार, यह स्थिति इस्पात कारखाने के लिए भी फायदेमंद होगी क्योंकि इस फर्म के अपशिष्ट की 70वीं इकाई का निपटान (यथा, 130वीं इकाई की सफाई) करने हेतु कोई वैकल्पिक प्रौद्योगिकी प्रयोग करने की लागत कम से कम ₹50 है।

ऐसे में आम तौर पर ये दोनों फर्में कोई परस्पर लाभकारी लेन–देन करने की स्थिति में होंगी, बशर्ते उस बिंदु पर जहाँ मोलभाव किया जाता है, MCC > MDC हो। इसके अलावा, इन दोनों पक्षों के बीच समझौता उस वक्त समाप्त हो जाएगा जब इस्पात कारखाने द्वारा छोड़े गए अपशिष्ट की अंतिम इकाई MCC = MDC होगी। ऐसा बिंदु E_O पर अथवा उत्सर्जन की 110 इकाइयों पर होगा।

हम MCC = MDC की स्थिति को 'प्रदूषण के इष्टतम स्तर की दशा' कह सकते हैं।

रोनाल्ड कोस द्वारा प्रतिपादित कोस प्रमेय इष्टतमत्व को मान्यता देने के सिवा भी काफी कुछ कहती है। इसके अनुसार, यह इष्टतम परिणाम पूर्णतः उन दोनों ही पक्षों से पूरी तरह

स्वतंत्र है जिनको नदी प्रयोग करने का अधिकार है। अतः अब हम उस स्थिति पर विचार करेंगे जिसमें इस्पात कारखाने के पास नदी प्रयोग करने के अनन्य कानूनी अधिकार हैं।

यहाँ इस्पात कारखाना चाहे तो अपना सारा अपशिष्ट नदी में बहा सकता है। यदि यह रणनीति अपनाई जाती है तो चित्र 12.3 में दर्शाए गए अनुसार यह कारखाना अपने अपशिष्ट की कुल 200 इकाइयाँ नदी में बहाएगा। बहरहाल, इस्पात कारखाने के लिए यह कोई एकमात्र विकल्प नहीं होगा। नदी में छोड़े गए अपशिष्ट की 110 से लेकर 200 तक की प्रत्येक इकाई के लिए MDC का मान MCC के मान से अधिक होगा। ऐसी स्थिति में दोनों पक्ष – मत्स्य उद्योग और इस्पात उद्योग – कोई परस्पर लाभकारी लेन–देन कर सकते हैं।

आइए, देखें कि जब उत्सर्जन 140 इकाइयों पर पहुँच जाता है तो क्या होता है। जब अपशिष्ट की यह इकाई नदी में छोड़ी जाती है तो मत्स्य उद्योग के MDC का मान ₹45 होता है, परंतु इसी इकाई के उपचार की लागत इस्पात उद्योग को मात्र ₹15 आती है। ध्यान देने की बात है कि ₹15 ही उत्सर्जन की 60वीं इकाई (200 – 140) नियंत्रित करने के लिए इस्पात कारखाने की सीमांत लागत है। तदनुसार, जब उत्सर्जन 140 इकाइयों पर होता है तो MDC का मान MCC के मान से *अधिक* होता है। इस स्थिति में मत्स्य–पालन केंद्र के सामने अपने अपशिष्ट की इतनी इकाइयाँ रोक कर रखने के लिए इस्पात कारखाने को ₹15 से लेकर ₹45 तक कुछ भी माली रिश्वत पेश करने का प्रलोभन होगा।

अब बड़ी सरलता से समझा जा सकता है कि इस्पात कारखाना अवश्यमेव इस प्रस्ताव को गंभीरता से लेगा क्योंकि उसको अपने अपशिष्ट की 60वीं इकाई (200 – 140) नियंत्रित करने की लागत मात्र ₹15 आती है। तदनुसार, उस सीमा तक कि मत्स्य–पालन केंद्र ₹15 से अधिक का प्रस्ताव करे, इस्पात कारखाना मत्स्य–पालन केंद्र की इच्छाओं का सम्मान करेगा।

एक इसी प्रकार की स्थिति उन इकाइयों के लिए आती है जहाँ MDC का मान MCC के मान से अधिक हो जाता है, यथा 200 और 110 इकाइयों के बीच। तदनुसार, प्रदूषण का इष्टतम स्तर फिर से E_O अथवा 110 इकाइयों पर पहुँच जाता है, जहाँ MDC = MCC होता है। यह परिणाम कोस प्रमेय की वैधता सत्यापित करता है।

आम तौर पर बाह्यता की वह मात्रा जो उक्त प्रभावशाली समाधान में उत्पन्न होगी, संपत्ति अधिकारों के निर्धारण पर निर्भर करेगी। इस प्रमेय का विचारात्मक निहितार्थ यह रहा है कि प्रदूषण संबंधी समस्याएँ संपत्ति अधिकारों के यादृच्छिक निर्धारण से हल की जा सकती हैं। प्रदूषण का इष्टतम स्तर असार्वजनिक पक्षों के स्वैच्छिक मोलतोल के माध्यम से हासिल किया जा सकता है – ठीक जैसा कि किसी निजी बाजार में होता है।

कोसियन उपागम की कुछ कमजोरियाँ भी हैं। बहरहाल, अनेक यथार्थ–जगत दशाओं में प्रदूषण के स्रोत प्रायः बहुआयामी हो जाते हैं और उनके प्रभाव तितर–बितर हो जाते हैं। इसके अलावा, पर्यावरणीय विवादों में सामान्यतया विभिन्न पक्ष शामिल होते हैं।

किसी विशिष्ट यथार्थ–जगत दशा में, तब मोलतोल और अमल की लागत – *लेन–देन लागत* (संपत्ति अधिकार निर्दिष्ट करने, परिभाषित करने और व्यवहार में लाने हेतु मौद्रिक

परिव्यय) – बहुत अधिक आ सकती है। ऊँची लेन–देन लागत किसी पर्यावरणीय विवाद के अंतिम परिणाम को काफी अहम तरीके से विकृत कर सकती है। ऐसी स्थिति में संपत्ति–अधिकार उपागम प्रयोग कर निकाला गया कोई समाधान सामाजिक रूप से इष्टतम माने जाने वाले किसी समाधान से कोसों दूर हो सकता हैं।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए 1

नोटः i) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।
ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपनी प्रगति की जाँच करें।

1) सकारात्मक बाह्यता और नकारात्मक बाह्यता क्या हैं? स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

2) सकारात्मक बाह्यता के उदाहरण में उत्पादन का सामाजिक इष्टतम स्तर ऊँचा क्यों होता है? एक आरेख की मदद से स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

3) बाह्यताएँ क्यों जन्म लेती हैं? कोई दो कारण प्रस्तुत करें।

.....

.....

.....

.....

4) कोस प्रमेय को स्पष्ट करें। यह प्रमेय किन अवधारणाओं के तहत काम करती है?

.....

.....

.....

.....

12.4 आर्थिक गतिविधि और जलवायु

बाजार क्रियातंत्र के माध्यम से संसाधन आवंटन – यानी ऐसा नियतन जो मात्र निजी लागत एवं लाभ संबंधी प्रतिफल पर ही आधारित हो – व्यापक समाज के दृष्टिकोण से देखे जाने पर निष्प्रभावी ही होगा (देखें पाठांश 12.2.1 व 12.2.2)। इस उदाहरण में बाजार विफलता का मामला साफ नजर आता है क्योंकि बाजार यदि अकेला चले तो उसमें किसी

ऐसे क्रियातंत्र का अभाव होगा जिससे बाह्य लागत और/ अथवा लाभ का पता लगाया जा सके। अतः हम कह सकते हैं कि उच्च उपभोग स्तरों ने पृथ्वी को एक ऐसी स्थिति में धकेल दिया है जहाँ उसे संसाधनों के पुनरुत्पादन की उस गति को बनाए रखने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ता है जो उन उच्च उपभोग स्तरों को कायम रखने के लिए अपेक्षित है।

हमारी जीवन शैली वर्ष दर वर्ष बदलती रही है। विश्व स्तर पर हम पहले से अधिक उत्पाद प्रयोग कर रहे हैं – पहले से अधिक वस्त्र पुराने करार दिए जाते हैं और इलेक्ट्रॉनिक अपशिष्ट का अंबार लगा जाता है। इन सभी गतिविधियों ने पारिस्थितिक जीवन–चक्र को प्रभावित किया है क्योंकि बढ़ा उपभोक्तावाद उत्पादन के ऊँचे स्तरों की ओर अग्रसर करता है, जिसके लिए कच्चे माल के पहले से अधिक परिवहन की आवश्यकता पड़ती है और जो बदले में उच्च कार्बन पदचिह्न की ओर प्रवृत्त करता है। परिवहन पर बने दबाव की वजह से ऊर्जा के गैर–नवीकरणीय स्रोतों को अतिरिक्त क्षति पहुँच रही है। उत्पादन से जनित अपशिष्ट महासागरों में छोड़ा जाता है जो कि समुद्री जीवन को प्रतिकूलतः प्रभावित करता है। ऐसी घटनाएँ जिनमें समुद्री जीव तट पर मृत पाए जाते हैं, अब दुर्लभ नहीं हैं।

विदेशी खाद्य वस्तुओं को आसपास ही पैदा होने वाली वस्तुओं के मुकाबले अधिक पसंद किया जाने लगा है। पौधों की आनुवांशिक रचना भी विषैले अपशिष्ट निस्तारण के कारण प्रभावित हो रही है। इन दिनों उत्पादों की डिब्बाबंदी और परिरक्षण के लिए प्लास्टिक बेहद महत्वपूर्ण हो गया है, जिसे अनेक अध्ययन स्वाभाविक तरीके से सड़ने वाला पदार्थ नहीं मानते, बल्कि उसे एक प्रमुख विषैला प्रदूषक भी बताते हैं। फिर भी हम विभिन्न रूपों में प्लास्टिक का निरंतर प्रयोग कर रहे हैं। ऐसे असंख्य उदाहरण और प्रसंग हैं जो स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि उपभोग प्रतिमानों ने हमारे जीवन में अचल परिवर्तन ला दिए हैं और हमारे सम्मुख कुछ अहम सरोकार ला खड़े किए है, जिनमें पर्यावरण प्रमुख है।

जलवायु परिवर्तन मानवजाति के लिए एक चिंता का विषय है क्योंकि इसके गंभीर एवं नानाविध प्रलयंकर आर्थिक, पारिस्थितिक और पर्यावरणीय निहितार्थ हैं। यह एक आम मान्यता है कि जलवायु परिवर्तन के कारण ही हमें अनेक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। वस्तुतः जलवायु से जुड़ी आपदाओं की प्रायिकता और तीव्रता दोनों ही उछाल पर हैं। हाल के इतिहास में दर्ज अमेरिका में कैटरीना जैसे समुद्री तूफान, दक्षिण एशिया में कई बार सूनामी, अफगानिस्तान और भारत में भूकंप, तथा जापान में टोकेज तूफान ऐसी ही आपदाओं के कुछ उदाहरण हैं।

भारत भी ग्लोबल वार्मिंग अर्थात् विश्वव्यापी तापक्रम वृद्धि के प्रति बेहद संवेदनशील है क्योंकि देश की अर्थव्यवस्था कृषि, जल, वन एवं पनबिजली जैसे जलवायु के प्रति संवेदनशील क्षेत्रों पर अत्यधिक निर्भर है। भारत के घनी आबादी वाले निम्नस्थ समुद्री तट इस संवेदनशीलता की जटिलता में और वृद्धि करते हैं। तटरेखा पर जलवायु से जुड़ी आपदाओं का खतरा निरंतर बना रहता है, जिनमें समुद्र के जलस्तर में वृद्धि शामिल है।

पर्यावरण अर्थशास्त्री उन बाह्यताओं में रुचि रखते हैं जो वायुमंडल, जल आपूर्ति, प्राकृतिक संसाधनों और जीवन की समग्र गुणवत्ता को नुकसान पहुँचाती हैं। इन पर्यावरणीय बाह्यताओं को नमूने के अनुसार बनाने के लिए प्रासंगिक बाजार को किसी ऐसी वस्तु के

रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए जिसका उत्पादन या उपभोग बाजार कारोबार के बाहर पर्यावरणीय क्षति उत्पन्न करता है।

12.5 राज्य पर्यावरण विनियमन

बाह्यताओं के श्रेष्ठ उदाहरण (जैसे कि सेब के बाग के पास पड़ोसी या मधुमक्खी पालनकर्ता का बगीचा) संकेत करते हैं कि मानो वे बिना किसी चिंताजनक परिणाम वाली कोई तुच्छ अवधारणा प्रस्तुत करते हों। बाह्यताएँ, बहरहाल, पर्यावरण के संदर्भ में गंभीर परिणाम आवश्यक लाती हैं। दूषित पेयजल, शहरों में धूम–कोहरा, निर्वनीकरण, तटीय क्षेत्रों के अस्तित्व पर खतरा, ओजोन परत का अवक्षय, अम्ल वर्षा, भूमंडलीय तापन आदि ऐसी ही बाह्यता के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं जो मानव जाति के सातत्य के लिए खतरा पैदा करते हैं। इनसे निपटने के लिए एक स्पष्ट तात्कालिकता हमारे समक्ष है।

किसी भी अर्थव्यवस्था में सरकारी विनियमन विचाराधीन जिंस अथवा क्रियाकलाप की प्रकृति एवं अभिभावी व्यापार परिवेश पर निर्भर करते हुए काफी विविधता दर्शाता रहा है। मूलतः सरकार द्वारा दो प्रकार की नीतियाँ अपनाई जाती हैं –

i) निर्देश एवं नियंत्रण (CAC), और

ii) बाजार–आधारित प्रोत्साहन (MBI)।

पारंपरिक उपागम में, नकारात्मक बाह्यताओं के साथ माल के उत्पादन को नियंत्रित करने के लिए सरकार फर्मों पर प्रतिबंध लगा देती है। दूसरी ओर, सरकार उन वस्तुओं के उत्पादन में प्रवेश करने की कोशिश भी करती है जो सकारात्मक बाह्यता उत्पन्न करते हैं।

नियामक उपागम के माध्यम से प्रदूषण कम किया जाना आमतौर पर **निर्देश–एवं–नियंत्रण उपाय** के रूप में भी जाना जाता है। ये उपाय प्रतिबंध लगा देने, नियतांश निर्दिष्ट कर देने अथवा उत्सर्जन मानक तय कर देने के रूप में होते हैं। निर्देश–एवं–नियंत्रण उपागम के तहत, प्रदूषणकारी माने जाने वाले कुछ आर्थिक क्रियाकलापों पर भी प्रतिबंध है। अन्य मामलों में, कई प्रदूषणकारी गतिविधियों के लिए नियतांश अर्थात् कोटा निर्धारित कर दिया जाता है और फिर वह फर्मों के बीच लाइसेंस के माध्यम से आवंटित किया जाता है।

निर्देश–एवं–नियंत्रण उपागम के अनुसार, सरकार या उसके किसी निर्दिष्ट निकाय द्वारा विविध प्रदूषणकारी स्रोतों से निकलने वाले विभिन्न प्रदूषकों (तरल, गैस और शोर) के लिए मानक तय कर दिए जाते हैं। उत्सर्जन मानकों को व्यापक पर्यावरण की स्वांगीकारक क्षमता के साथ–साथ क्षेत्र में रहने वाले मनुष्यों के स्वास्थ्य पर प्रभावों और विद्यमान प्राकृतिक संसाधनों को भी ध्यान में रखते हुए तय किया जाता है। पर्यावरण प्रदूषण को विनियमित करने के लिए आम तौर पर दो प्रकार के मानक प्रयोग किए जा सकते हैं –

a) परिवेशी पर्यावरण मानक, और

b) उद्योग–विशिष्ट मानक।

परिवेशी पर्यावरण मानकों का अभिप्राय विभिन्न प्रदूषणकर्ताओं के लिए तय उन सीमाओं से होता है जिन्हें मानव जाति और प्रकृति के लिए सुरक्षित माना जाता है। ये मानक वायु, जल और ध्वनि जैसे पर्यावरण के संघटक अंगों के लिए विहित किए गए हैं। राष्ट्रीय

परिवेशी वायु गुणवत्ता मानक केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (CPCB) द्वारा निर्धारित किए गए हैं। इन मानकों को जन स्वास्थ्य, वनस्पति और प्रकृति की सुरक्षा के लिए अनिवार्य वायु गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया गया है। औद्योगिक, आवासीय और संवेदनशील क्षेत्रों के लिए भिन्न–भिन्न मानक तय किए गए हैं।

निर्देश–एवं–नियंत्रण उपाय प्रायः अक्षम पाए जाते हैं क्योंकि ये लक्ष्य प्राप्त करने के लिए समाज पर उच्च लागत थोप देते हैं। चूँकि निर्देश–एवं–नियंत्रण उपागम प्रदूषणकारी अभिकरणों के बीच अंतर नहीं करता और कुछ विशिष्ट क्रियाकलापों पर एक–सा ही सामान्य प्रतिबंध लगाता है, यह स्वच्छ प्रौद्योगिकी में नवाचार के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता। कुछ अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि **बाजार–आधारित प्रोत्साहन** के माध्यम से बहुत कम लागत पर इस प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है।

बाजार–आधारित प्रोत्साहन का मुख्य उद्देश्य होता है – एक ऐसा बाजार–तंत्र विकसित करना जहाँ प्रदूषण की सामाजिक लागत प्रदूषणकर्ताओं द्वारा वहन की जाए। तदनुसार, निजी लागत और सामाजिक लागत के बीच भिन्नता से बचा जाएगा और प्रदूषणकारी वस्तुओं का उत्पादन उनके सामाजिक रूप से इष्टतम स्तर पर ही किया जाएगा।

ये प्रोत्साहन बाजार संघटन सिद्धांत के आधार पर विकसित किए जाते हैं, और आर्थिक सहायताओं का निराकरण कर उत्सर्जन, आदान एवं उत्पादन पर पर्यावरण शुल्क शुरू करके संसाधनों के अदक्ष प्रयोग से उत्पन्न होने वाली विकृतियों को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

आइए, पर्यावरण प्रदूषण के मामले पर विचार करें। किसी प्रदूषणकारी वस्तु के उत्पादनकर्ता अपना बहिःस्राव अर्थात् अपशिष्ट जल नदी या समुद्र में छोड़ देते हैं। परिणामतः नदी का जल अपने अनुप्रवाह पर अथवा समुद्रतट पर दूषित हो जाता है। प्रदूषणकारी गतिविधियों के प्रतिकूल प्रभाव ने अक्सर सरकार को उकसाया है कि वह प्रदूषणकारी वस्तुओं के उत्पादन पर प्रतिबंध लगा दे अथवा प्रदूषणकारी गतिविधियों को आवासीय क्षेत्रों से कहीं दूर स्थानांतरित करा दे।

किसी भी स्थान पर मुफ्त में ही कूड़ा–करकट निपटा देने से उत्पादनकर्ता की उत्पादन लागत घट जाती है। इससे वह सामाजिक इष्टतम से उच्चतर स्तर पर उत्पादन करने को प्रोत्साहित होता है।

हाल के वर्षों में, बाजार–आधारित प्रोत्साहन हेतु निर्देश–एवं–नियंत्रण उपायों वाली नीति में कुछ बदलाव देखा गया है। तदनुसार, प्रदूषणकारी गतिविधियों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने की बजाय सरकार प्रदूषणकारी इकाइयों से प्रदूषण शुल्क अर्थात् उत्सर्जन कर स्वरूप कुछ राशि वसूलती है।

इसका उद्देश्य उत्पादन लागत बढ़ाना होता है ताकि प्रदूषणकारी माल सामाजिक रूप से इष्टतम स्तर पर ही तैयार हो। इस प्रक्रिया में, बहरहाल, सरकार वह आय अर्जित करती है जो प्रदूषण उपशमन हेतु अथवा अन्य उत्पादक क्रियाकलापों के लिए प्रयोग की जा सकती है।

12.5.1 पिगोवियन कर

बाह्यताओं की समस्या का एक आर्थिक समाधान सन 1920 के दशक में सुप्रसिद्ध ब्रिटिश अर्थशास्त्री अर्थर पिगू द्वारा प्रदूषण कर के रूप में विकसित किया गया। इसी कर को लोक–व्यापी रूप में पिगोवियन कर कहा जाता है।

पिगू के अनुसार, समाज पर अपनी प्रदूषणकारी गतिविधि से किसी फर्म द्वारा थोपी गई सामाजिक क्षति अथवा सामाजिक लागत उस फर्म पर कोई प्रदूषण कर लगाकर बेअसर किया जा सकता है।

उक्त अर्थशास्त्री के अनुसार, इस कर की दर समाज पर प्रदूषणकारी फर्म द्वारा थोपी जा रही सीमांत पर्यावरण लागत अथवा सीमांत सामाजिक क्षति के बराबर होती है। यह वही बाह्य लागत है जिस पर हमने पाठांश 12.2.2 में चर्चा की।

चलिए, नदी के उजान पर स्थित इस्पात कारखाने और उसके निचान पर स्थित मत्स्य–पालन केंद्र का उदाहरण लेते हैं। किसी दंड अथवा कर के अभाव में इस्पात कारखाना प्रदूषण का गलत दाम चुकाता है। जहाँ तक कि इस्पात कारखाने का सवाल है, उसके प्रदूषण के उत्पादन की लागत शून्य है, परंतु वह प्रदूषण द्वारा मत्स्य–पालन केंद्र पर थोपी जाने वाली लागत की उपेक्षा करता है।

इस दृष्टिकोण से, उक्त स्थिति को यह सुनिश्चित करके सुधारा जा सकता है कि प्रदूषणकर्ता अपनी करतूतों के लिए माकूल सामाजिक लागत चुकाएगा। ऐसा करने का एक तरीका यह है कि इस्पात कारखाने द्वारा उत्पन्न प्रदूषण पर कर लगा दिया जाए।

इस स्थिति को हम चित्र 12.4 में स्पष्ट देख सकते हैं, जहाँ MC_S सामाजिक सीमांत लागत है, जबकि MC_P किसी वस्तु के उत्पादन की निजी सीमांत लागत है।

जब अधिक उत्पादन दिया जाता है तो प्रदूषण स्तर के साथ MC बढ़ता है। प्रदूषण वस्तु हेतु माँग माँग वक्र D' से दर्शाई जाती है (जो कि सीमांत आय वक्र MR को निरूपित करता है)।

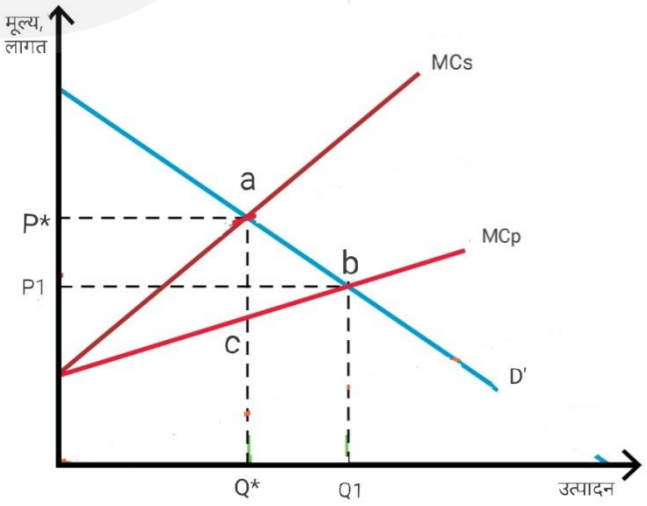

चित्र 12.4: पिगोवियन कर

यहाँ बाजार कार्यतंत्र के अनुसार, साम्य अवस्था बिंदु b पर है, जो यह दर्शाता है कि साम्यावस्था उत्पादन Q_1 होगा और साम्यावस्था मूल्य P_1 होगा। यहाँ, MC_P = MR अथवा

D' होगा। उत्पादन का सामाजिक रूप से इष्टतम स्तर, बहरहाल, Q* है और मूल्य P* है, जहाँ MC_S = MR अथवा D' होगा। यदि उत्पादनकर्ता को सामाजिक लागत भी चुकाने को बाध्य किया जाता तो साम्यावस्था उत्पादन स्तर Q_1 पर दिखाई पड़ता।

चित्र 12.4 से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक रूप से इष्टतम–स्तर उत्पादन पर MC_S और MC_P के बीच अंतर 'ac' है। बाह्यताओं को आंतरिकीकृत करने के लिए पिगू उत्पादन की प्रति इकाई एक कर t लगाने का सुझाव देते हैं, जहाँ t = ac होगा।

अब इस अवधारणा पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है कि जब उत्पादन स्तर बदलता है तो उत्पादन की प्रति इकाई उत्सर्जित प्रदूषण अपरिवर्तित ही रहता है।

12.5.2 उत्सर्जन कर

पर्यावरण नियमों के संबंध में, हम उन मामलों की जाँच करेंगे जिनमें कानूनी प्रणाली का उपयोग केवल *अप्रत्यक्ष* रूप से किया जाता है, और उसका उद्देश्य मुख्यतः मूल्य विकृतियों को दूर करना होता है।

एक प्रमुख उपागम जो ऐसे मसलों को हल करने के लिए प्रयोग किया जाता है वह है – बहिःस्राव शुल्क या उत्सर्जन कर।

उत्सर्जन कर अथवा एक प्रकार का शुल्क या आर्थिक दंड है जो प्रदूषणकर्ताओं पर राजकीय प्राधिकरणों द्वारा लगाया जाता है। यह शुल्क व्यापक पर्यावरण में 'उत्सर्जन की प्रति इकाई रुपए' के आधार पर निर्दिष्ट क्या जाता है। उदाहरण के लिए, किसी फर्म को अपना अपशिष्ट किसी झील में छोड़ने के लिए उस पदार्थ की प्रति इकाई ₹100 उत्सर्जन कर के रूप में चुकाना पड़ सकता है।

चित्र 12.5 एक सीमांत उपशमन लागत (MCA) वक्र और एक क्षैतिज वक्र द्वारा विशिष्ट उत्सर्जन कर (T_1) दर्शाता है। उच्च उत्सर्जन स्तर पर MCA का स्तर निम्न होता है और इसका विपरीत भी सत्य है। उत्सर्जन स्तर L_1 पर उत्सर्जन कर MCA के बराबर होता है।

यदि फर्म उत्सर्जन घटाना चाहती है और L_1 स्तर के बाईं ओर नजर आना चाहती है तो MCA का मान उत्सर्जन कर T_1 से अधिक होगा। अतः वह उपशमन की उच्चतर लागत वहन नहीं करेगी और उत्सर्जन कर चुका कर उत्सर्जन स्तर L_1 पर ही रुकी रहना चाहेगी।

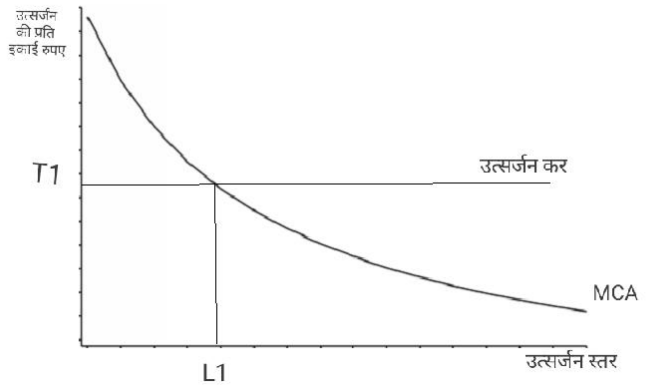

चित्र 12.5: उत्सर्जन कर

इसी प्रकार, यदि फर्म उस उत्सर्जन स्तर पर ही बनी रहना चाहे जो L_1 की दाईं ओर है तो MCA का मान T_1 से कम होगा। अब फर्म उत्सर्जन स्तर L_1 तक उत्सर्जन के सभी स्तरों पर उत्सर्जन कर चुकाने की बजाय सीमांत उपशमन लागत वहन करना पसंद करेगी।

सार्वजनिक नीति के साधन स्वरूप बहिःस्राव शुल्क का एक लंबा इतिहास रहा है और इसका उपयोग विभिन्न प्रकार की पर्यावरणीय समस्याओं को हल करने के लिए किया जाता है। कोई भी उत्सर्जन कर अपने तीन प्रमुख आकर्षण दर्शाता है –

- **पहला**, यह उत्सर्जन मानकों की तुलना में कम हस्तक्षेप करने वाला होता है और विशुद्ध रूप से वित्तीय प्रोत्साहन अथवा हतोत्साहन के आधार पर संचालित होता है, न कि किसी निर्देश–एवं–नियंत्रण सिद्धांत पर।
- **दूसरा**, इसे प्रभाव में लाना अपेक्षाकृत सरल हो सकता है।
- **तीसरा**, यह फर्मों को उन्नत प्रौद्योगिकीय साधनों के माध्यम से अपना प्रदूषण कम करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करता है।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए 2

नोटः i) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।
ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपनी प्रगति की जाँच करें।

1) उपभोग का बढ़ता स्तर जलवायु को कैसे प्रभावित करता है?

……

……

……

2) राज्य बाह्यताओं से जुड़े पर्यावरणीय मुद्दों को कैसे नियंत्रित करता है?

……

……

……

3) पिगोवियन कर क्या है? एक आरेख की सहायता से स्पष्ट करें।

……

……

……

4) उत्सर्जन कर क्या है? इसके क्या–क्या लाभ हैं?

……

……

12.6 सारांश

इस इकाई की शुरुआत हमने बाह्यता की अवधारणा और उसकी किस्मों को समझने के साथ की। बाह्यताएँ के दो प्रकार होती हैं – सकारात्मक और नकारात्मक। यहाँ यह समझना अपरिहार्य होता है कि बाह्यता उत्पन्न करने वाले किसी उत्पाद के मामले में उसका अधिक उत्पादन अथवा अल्प उत्पादन कैसे होता है। पर्यावरण की नकारात्मक बाह्यताएँ उसे जबर्दस्त तरीके से प्रभावित करती हैं और इस कारण सरकार को बाह्यताएँ उत्पन्न करने वाली गतिविधियों और फर्मों की जाँच–पड़ताल करनी पड़ती है।

विश्व स्तर पर, पर्यावरणीय बाह्यताओं के मुद्दे ने खास अहमियत हासिल कर ली है और यही बात भारत में भी देखी गई है। उक्त उत्पादों के अधिक उत्पादन पर विनियमन के माध्यम से अंकुश लगाने के दो तरीके हैं – निर्देश–एवं–नियंत्रण उपागम तथा बाजार–आधारित प्रोत्साहन।

हमने पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने के दो प्रमुख तरीकों के रूप में पिगोवियन कर और उत्सर्जन कर पर भी चर्चा की।

12.7 शब्दावली

नकारात्मक बाह्यता यदि किसी एक व्यक्ति के कार्यों का किसी दूसरे व्यक्ति पर अनुपयोगी अथवा हानिकारक प्रभाव पड़ता हो तो इसे नकारात्मक बाह्यता कहा जाएगा।

सकारात्मक बाह्यता यदि किसी एक व्यक्ति के कार्यों का किसी दूसरे व्यक्ति पर उपयोगी अथवा लाभकारी प्रभाव पड़ता हो तो इसे सकारात्मक बाह्यता कहा जाएगा।

कोस प्रमेय कोस प्रमेय अर्थशास्त्री रोनाल्ड कोस द्वारा विकसित एक विधिसम्मत एवं आर्थिक सिद्धांत है। यह इस बात की पुष्टि करता है कि जहाँ बिना किसी लेन–देन लागत के साथ पूर्ण प्रतिस्पर्धी बाजार विद्यमान होते हैं, इस बात पर ध्यान दिए बिना ही उत्पादन–इष्टतम आवंटन में और उससे आदानों और प्रदाओं का एक दक्ष सेट चुन लिया जाता है कि स्वामित्व अधिकार किस प्रकार वितरित किए गए।

पिगोवियन कर एक प्रदूषण कर जो किसी प्रदूषणकारी फर्म द्वारा समाज को प्रदूषित कर उसे सामाजिक क्षति पहुँचाए जाने अथवा उस पर सामाजिक लागत थोपे जाने को बेअसर करता है।

उत्सर्जन कर उत्सर्जन कर एक ऐसा कर अथवा आर्थिक दंड है जो सरकारी अधिकारियों द्वारा प्रदूषणकर्ताओं पर लगाया जाता है। यह शुल्क परिवेशी पर्यावरण में उत्सर्जन की प्रति इकाई रुपयों के आधार पर निर्दिष्ट किया जाता है।

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

हसन, अहमद एम. (2004), *प्रिन्सिपल्स ऑफ इन्वायर्मेंटल इकनॉमिक्स* (दूसरा संस्करण), रूटलेज, टेलर एंड फ्रांसिस ग्रुप।

पिंडीक, रॉबर्ट एस., डैनियल एल. रुबिनफील्ड एवं प्रेम एल. मेहता (2013), *माइक्रोइकनॉमिक्स* (सातवाँ संस्करण), पीयरसन।

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) (पाठांश 12.2.1 और 12.2.2 देखें) जब किसी व्यक्ति के कार्यों का दूसरे व्यक्ति पर प्रभाव सकारात्मक होता है तो हम इसे सकारात्मक बाह्यता कहते हैं, जबकि नकारात्मक बाह्यता एक बाहरी प्रभाव है जो किसी तीसरे पक्ष पर लागत डाल देता है।

2) (पाठांश 12.2.1 देखें) सकारात्मक बाह्यता की विद्यमानता में हम सामाजिक और निजी लाभों के बीच एक स्पष्ट अंतर देखने की आशा करते हैं जो उत्पादन के सामाजिक इष्टतम स्तर से नीचे की ओर ले जाता है।

3) (पाठांश 12.3 देखें) बाह्यता सामान्यतः दो कारणों से उत्पन्न होती है। पहला, विचाराधीन संसाधन या उत्पाद अपने स्वभाव से ही उपभोग में गैर–प्रतिद्वंद्वी हो सकता है। ऐसा उत्पाद संयुक्त उपभोग के अधीन होगा। दूसरा, प्राकृतिक या तकनीकी कारणों से, बाह्यता को आंतरिक करने की लेन–देन लागत बहुत अधिक हो सकती है।

4) (पाठांश 12.3 देखें) यह उपागम दर्शाता है कि यदि संपत्ति के अधिकार अच्छी तरह से परिभाषित हों तो बाह्यता की समस्या का एक प्रभावी समाधान निकाला जा सकता है। इस समाधान को 'कोस प्रमेय' के रूप में जाना जाता है। यह निम्नलिखित अवधारणाओं के तहत काम करता है – शून्य लेन–देन लागत, सुस्पष्ट स्वामित्व अधिकार, बाजार में पूर्ण प्रतिस्पर्धा की विद्यमानता, कोसियन समाधान के साथ शून्य आय या धन–संपत्ति प्रभाव लागू, शून्य निःशुल्क लाभभागी प्रभाव – क्योंकि सभी पक्षों के पास सुस्पष्ट स्वामित्व अधिकार होते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) (पाठांश 12.4 देखें) हम विश्व स्तर पर अधिक उत्पादों का उपभोग कर रहे हैं, अधिक कपड़े इकट्ठा कर रहे हैं और अधिक इलेक्ट्रॉनिक कचरा जमा कर रहे हैं। इन सब गतिविधियों ने पारिस्थितिक चक्र को प्रभावित किया है क्योंकि बढ़ते उपभोक्तावाद से उत्पादन का स्तर बढ़ता है जिसके लिए कच्चा माल की अधिक ढुलाई किए जाने की आवश्यकता पड़ती है और इसके परिणामस्वरूप उच्च स्तर पर कार्बन पदचिह्न उत्पन्न होते हैं।

2) (पाठांश 12.5 देखें) मूल रूप से, सरकार दो प्रकार की नीतियाँ अपनाती है – i) आदेश और नियंत्रण (CAC) मापदंड, और ii) बाजार–आधारित प्रोत्साहन (MBI)।

3) (पाठांश 12.5.1 देखें) किसी फर्म द्वारा समाज को अपनी प्रदूषण गतिविधि द्वारा पहुँचाई गई सामाजिक क्षति या उस पर थोपी गई सामाजिक लागत को उस फर्म पर पिगोवियन कर नामक प्रदूषण कर लगाकर बेअसर किया जा सकता है।

4) (पाठांश 12.5.2 देखें) उत्सर्जन कर एक प्रकार का कर या आर्थिक दंड है जो सरकारी अधिकारियों द्वारा प्रदूषकों पर लगाया जाता है। यह शुल्क व्यापक परिवेश में उत्सर्जन की प्रति इकाई रुपये के आधार पर निर्दिष्ट किया जाता है। इस कर के तीन बड़े फायदे हैं। सर्वप्रथम, यह उत्सर्जन मानकों की तुलना में कम हस्तक्षेपवादी है और विशुद्ध रूप से वित्तीय प्रोत्साहन या हतोत्साहन के आधार पर संचालित होता है, आदेश और नियंत्रण (CAC) सिद्धांत पर नहीं। दूसरे, इसे लागू करना अपेक्षाकृत आसान हो सकता है। तीसरे, यह बेहतर तकनीकी साधनों के माध्यम से फर्मों को अपने प्रदूषण को कम करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY